Con. 4. VIII-21.49
350

अंक 8
संख्या 21

मंगलवार,
14 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप
[नवीन अनुच्छेद 111-क, 103-क, अनुच्छेद 164, नवीन अनुच्छेद 167-क, अनुच्छेद-171, 175, 187, 196, 203, 208, 209 तथा नवीन अनुच्छेद 209-क] ...1269-1329

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 14 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 111 (क)—(*जारी*)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, कल मैंने सभा का ध्यान अनुच्छेद 112 की ओर आकृष्ट किया था जिसे हम स्वीकार कर चुके हैं। मेरा कहना है कि उस अनुच्छेद को स्वीकार करके हमने अपने को एक नीति विशेष को बरतने के लिये वचनबद्ध कर दिया है।

अनुच्छेद 112 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को यह क्षमता मिल जाती है कि विशेष अनुमति प्रदान करके आपराधिक मामलों की अपील को वहां लाने की अनुज्ञा दे सकता है। इसका मतलब यह होता है कि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं कि आपराधिक मामलों की अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकती है, अगर इसके लिये सम्बन्धित उच्च न्यायालय प्रमाणपत्र दे दे। सभा को कृपया इस स्थिति पर विचार करना चाहिये। वर्तमान में आपराधिक मामलों की अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती है, अगर सम्बन्धित उच्च न्यायालय इसके लिये प्रमाण पत्र देता है और अगर प्रमाणपत्र वह नहीं देता है तो प्रिवी कौंसिल विशेष अनुमति द्वारा मामले की अपील को अपने न्यायालय में लाने की आज्ञा दे सकती है। विशेष अनुमति का प्रावधान एक अवशिष्ट प्रावधान है और इस संरक्षण के लिये है कि उच्च न्यायालय अपेक्षित प्रमाणपत्र देना अस्वीकार करता है, तो उसका ऐसा करना सकारण हो न कि वह ऐसा स्वेच्छाचारिता से करता हो। मेरा यह कहना है कि अनुच्छेद 112 को स्वीकार करने का मतलब यह है कि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिये वचनबद्ध हो जाते हैं कि आपराधिक मामलों की अपील भी सम्बन्धित उच्च न्यायालय के एतदर्थ प्रमाणपत्र देने पर उच्चतम न्यायालय में पेश की जा सकती है। उच्च न्यायालय प्रमाणपत्र दे या अस्वीकार करे, यह जो व्यवस्था है वह बड़ी सुविधाजनक है। इसमें क्या सुविधा है यह स्पष्ट है। जिस उच्च न्यायालय से प्रमाण पत्र मांगा जायेगा वह उस मामले पर अपीलीय तथा पूर्ण विचारमूलक न्यायालय की हैसियत से उस मामले पर पूरी तरह विचार कर चुका रहेगा और उसी के निर्णय के विरुद्ध अपील के लिये आवेदन किया जायेगा। यह उस मामले के और उससे सम्बन्ध रखने वाले सारे तथ्यों से पूरी तरह परिचित रहेगा। प्रान्तों में पहले ही अनेक उच्च न्यायालय हैं और संघबद्ध राज्यक्षेत्र के

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अन्तर्गत अब प्राय: 1 दर्जन से भी अधिक उच्च न्यायालय हो जायेंगे। इन सभी न्यायालयों के लिये यह बड़ी सुविधा की बात होगी, अगर उनको ही पहले यह अधिकार रहे कि उनके निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने की अनुमति वह चाहे दें या न दें। और उनके न देने पर ही उच्चतम न्यायालय विशेष अनुमति द्वारा अपील को लाने की अनुमति दे। इसलिये इस सुविधाजनक प्रावधान को हमें अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिये। अगर उच्च न्यायालय अपील के लिये प्रमाणपत्र नहीं देता है, तो अधिकांश मामलों के सम्बन्ध में हम यही मानेंगे कि उच्च न्यायालय ने प्रमाण देने से ठीक ही अस्वीकार किया है। ऐसी सूरत में अगर विशेष अनुमति के लिये उच्चतम न्यायालय से आवेदन किया जायेगा, तो दस में नौ मामलों में तो वह विशेष अनुमति देना अस्वीकार ही कर देगा, क्योंकि उच्च न्यायालय ने प्रमाणपत्र देना अस्वीकार करते समय विधि सम्बन्धी प्रश्न पर या अपील की उपयोगिता पर सम्यक् रूप से विचार कर लिया होगा। ऐसी दशा में इस व्यवस्था के अधीन विशेष अनुमति के उच्चतम न्यायालय को जो आवेदन किये जायेंगे उनकी संख्या बहुत ही कम हो जायेगी, क्योंकि इससे प्रिवी कौंसिल में एतदर्थ किये जाने वाले आवेदनों की संख्या बिल्कुल कम हो चुकी है। इसलिये मेरा यह कहना है कि उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र की जो व्यवस्था है वह न केवल एक तर्कसंगत व्यवस्था ही है, बल्कि सुविधाजनक भी है और अन्ततोगत्वा समयादि की दृष्टि से यह व्यवस्था मितव्ययी भी सिद्ध होगी। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि समुचित मामलों में भी उच्च न्यायालय अपील ले जाने के लिये प्रमाणपत्र देना अस्वीकार कर बैठता है, पर उन सीमित मामलों में देश के सर्वोच्च न्यायालय को यह विशेष अधिकार रहना चाहिये कि वह विशेष अनुमति प्रदान करके उनको पेश करने की आज्ञा दे। उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार हो जायेगी, इस सम्भावना से आशंकित हो कर कई सदस्यों ने यहां इस संशोधन के प्रावधानों का विरोध किया है। यह कहा गया है कि पता नहीं, इस व्यवस्था के रखने से उच्चतम न्यायालय में कितनी अपीलें पहुंच जायेंगी। इस संशोधन का इस भय के कारण विरोध किया जा रहा है कि इससे उच्चतम न्यायालय का काम बहुत बढ़ जायेगा और उसको निपटाने के लिये हमें बहुत से न्यायाधीश नियुक्त करने पड़ेंगे। पर मेरा कहना यह है कि यह आशंका सर्वथा निराधार है। जहां तक विधि विषयक प्रश्न का सम्बन्ध है, केवल ऐसे ही मामलों में जहां कि कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है, किसी पक्ष को अपील ले जाने के लिये प्रमाणपत्र पाने में या विशेष अनुमति पाने में सफलता मिल सकती है। सारवान विधि-प्रश्न की जो बात कही गई है उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। ऐसे मामले की अपील न की जा सकेगी, जहां कोई विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, बल्कि जहां कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो, उसी मामले के अपील की गुंजाइश इस प्रावधान द्वारा हो सकेगी और सारवान विधि-प्रश्न वाले मामलों की परिधि बड़ी सीमित होती है। जहां विधि सम्बन्धी कोई गम्भीर गलती या अनियमितता हुई हो वहीं सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त समझा जायेगा। प्रक्रिया सम्बन्धी कोई कानूनी त्रुटि का होना, मसलन दोषारोपण में कोई गलती रह गई हो या इसी तरह दंड-प्रक्रिया-संहिता के अनुसार कार्रवाई न हुई हो और जाप्ते की गलती रह गई हो, या प्रक्रिया सम्बन्धी किसी विधि का उल्लंघन हुआ हो—इस सब बातों को

उच्च न्यायालय या किसी अपीलीय न्यायालय में भी, कानून की दृष्टि से, शिकायत का पर्याप्त कारण नहीं माना जाता और इनके आधार पर उच्चतम न्यायालय में भी किसी मामले की अपील न हो सकेगी, क्योंकि दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 537 के अनुसार प्रक्रिया सम्बन्धी किसी त्रुटि को आपराधिक मामलों में हस्तक्षेप के लिये पर्याप्त कारण नहीं समझा जा सकता है, जब तक कि यह बात भी न हो कि ऐसी त्रुटि के परिणामस्वरूप पक्ष को क्षति पहुंचती हो। इसलिये सारवान विधि-प्रश्न की परिधि इतनी सीमित है कि केवल प्रक्रिया सम्बन्धी त्रुटि का होना ही मामले की अपील की अनुमति के लिये पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि उस त्रुटि का प्रभाव उस मामले में इतना गम्भीर पड़ता हो कि उससे पक्ष को वास्तविक और गम्भीर क्षति पहुंचती हो, तभी उसको अपील की अनुमति मिल सकेगी। इसलिये 'सारवान विधि-प्रश्न' की जो शर्त्त रख दी गई है उससे प्रक्रिया-सम्बन्धी भूल के आधार पर अपील की अनुमति न मांगी जा सकेगी और लोगों की जो यह आशंका है कि प्रक्रिया सम्बन्धी भूल के आधार पर अपीलों की उच्चतम न्यायालय में भरमार हो जायेगी वह सर्वथा निराधार है। फिर प्रक्रिया सम्बन्धी और भी भूलें हैं। मसलन सेशन के मुकदमे में जूरी को गलत संकेत दिया जा सकता है। इसके सम्बन्ध में भी यह मान लिया गया है कि किसी मामले के निर्णय के सम्बन्ध में हस्तक्षेप के लिये गलत संकेत को ही पर्याप्त आधार न समझा जायेगा, बल्कि हस्तक्षेप तभी किया जायेगा जब कि उसके फलस्वरूप सही न्याय न हो सका हो। इसलिये यह जो आशंका है कि सारवान विधिप्रश्न के अन्तर्ग्रस्त रहने के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपीलों के जाने की जो व्यवस्था रखी जा रही है उससे वहां अपीलों की भरमार हो जायेगी, वह बिल्कुल निराधार है। और फिर अभी-अभी जो अन्तिम मामला श्री रामअनुसिंह का प्रिवी कौंसिल में चल रहा था, उसमें दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 306 के अधीन जूरी के फैसले के विरुद्ध सेशन जजों को राय देने का जो हक है, उसके सम्बन्ध में 1946 में यह फैसला हुआ है कि जब तक कि जूरी का निर्णय स्पष्टतः ऐसा असंगत न हो कि तर्कसंगत व्यक्तियों का कोई निकाय ऐसे निर्णय पर न पहुंचता हो और अपील में यही कारण न दिखाया गया हो, तब तक किसी भी मामले में चाहे उसमें जूरी को गलत संकेत क्यों न दिया गया हो या साक्ष्य कानून (Evidence Act) के विपरीत कोई पक्की गवाही ही क्यों न गुज़ारी गई हो, उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप का पर्याप्त कारण न समझा जायेगा। और उच्चतम न्यायालय भी, मेरा कहना है कि ऐसे कारणों के आधार पर ही किसी मामले की अपील की अनुमति देगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि सारवान विधि-प्रश्न के अन्तर्ग्रस्त होने की जो शर्त यहां रखी गई है, वह एक ऐसी व्यवस्था है जो अनावश्यक अपीलों को उच्चतम न्यायालय में आने से रोकने के लिये एक पर्याप्त संरक्षण रहेगी। सिर्फ उसी हालत में जब कि प्रक्रिया सम्बन्धी गलती के कारण या अनियमित रूप से गवाही गुजारने के कारण मामले पर फैसला देने में गम्भीर अन्याय होगा, तभी मामले की अपील के लिये प्रमाणपत्र या विशेष अनुमति मिल सकेगी। अपराध के विनिश्चयन के सम्बन्ध में जो सवाल उठता है, वह वस्तुतः एक गम्भीर बात होती है। अभी हाल में प्रिवी कौंसिल ने 1947 में एक मामले में यह फैसला दिया है कि दण्ड-संहिता की धारा 34 के अधीन, जो कि उन सभी मामलों में लागू मानी जाती है, जहां कई आदमियों ने मिल कर एक ही इरादे से कार्रवाई की हो, ऐसी कार्रवाई को अपराध का रूप नहीं दिया जा सकता है। वस्तुतः इस मामले को लेकर, इस सम्बन्ध में जो स्पष्टीकरण प्रिवी कौंसिल ने किया है

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

उससे दण्ड-संहिता की धारा 34 के अन्दर आने वाले अनेक अपराध अब इस धारा के अन्दर अपराध नहीं रह जाते हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जो इस सम्बन्ध में अभी प्रिवी कौंसिल में 1947 में निर्णीत हुआ है, वह श्री निवासमल के मामले के सम्बन्ध में है। प्रिवी कौंसिल का निर्णय यह रहा है कि यद्यपि सम्बन्धित दण्ड-विधि में यह बात न कही गई हो, पर कोई कार्रवाई अपराध तभी मानी जायेगी जब अपराध के इरादे और ज्ञान से वह की गई हो। जब तक कि दण्ड-विधि में साफ तौर पर अन्यथा न कहा गया हो अपराधी मन का होना, यानी अपराध के इरादे से कार्रवाई का करना ही अपराध माना जायेगा और इसके लिये यह सिद्ध करना होगा कि अभियुक्त ने अपराध के इरादे से ही कार्रवाई की थी। इस सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल ने अपराध सम्बन्धी उन मूल तथ्यों पर जोर दिया है, जिनके आधार पर किसी कार्रवाई को अपराध माना जा सकता है और यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सारवान विधि-प्रश्न अधिकतर उठेंगे, अपराध सम्बन्धी मूल तत्वों को लेकर या प्रक्रिया सम्बन्धी या साक्ष्य सम्बन्धी त्रुटि को लेकर। इसलिये मेरा कहना यह है कि यह आशंका सर्वथा निराधार है कि इस व्यवस्था से उच्चतम न्यायालय में अपीलों की भरमार हो जायेगी। प्रिवी कौंसिल ने ऐसे मामलों में जहां कोई गम्भीर भूल न हुई हो या पक्ष के साथ अन्याय न हो गया हो, अपीलों के लिये विशेष अनुमति के निमित्त आये हुये आवेदनों को सदा अस्वीकार ही किया है। साल में दो या तीन मामलों में ही या अधिक से अधिक 6 मामलों में कह लीजिये, उसने हस्तक्षेप किया होगा। मुझे इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि उच्च न्यायालय अपील के लिये प्रमाणपत्र देने में अधिक से अधिक सावधानी बरतेगा और सिर्फ उन्हीं मामलों में अपील की अनुमति देगा जहां दण्ड-विधि को गलत प्रयोग में लाया गया है या प्रक्रिया या साक्ष्य सम्बन्धी नियमों का ऐसा उल्लंघन हुआ है कि उसके फलस्वरूप पार्टी को वस्तुतः क्षति पहुंची हो। मुझे इसमें भी रंचमात्र सन्देह नहीं है कि अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय भी पर्याप्त सावधानी से ही काम लेगा ताकि व्यर्थ की अपीलों के लिये अनुमति न मांगी जाये। फिर इसके अलावा यह भी प्रतिबन्ध रखा गया है कि उच्च न्यायालय या प्रिवी कौंसिल में अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होने वाले व्यक्तियों को यह प्रमाणपत्र देना होगा कि मामले की अपील के लिये पर्याप्त कारण है। और अगर अपील विशेष अनुमति या प्रमाणपत्र के लिये अनावश्यक आवेदन पत्र कोई वकील देता है, तो उसकी बड़ी ही तीव्र आलोचना होगी जिससे अनावश्यक अपीलों के आवेदन पत्र देने पर काफी रोकथाम आ जायेगी। उच्चतम न्यायालय में भी अवश्य ही इस उपयोगी व्यवस्था का अनुगमन किया जायेगा और इन सभी बातों को हमें उच्चतम न्यायालय पर ही छोड़ देना चाहिये। फैडरल न्यायालय ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि बिना पर्याप्त एवं संगत कारणों के अपीलों को मन्जूर करना वह पसन्द नहीं करता है। इस दृष्टि से देखते हुये हम कहेंगे कि अपीलों के बाहुल्य की जो आशंका प्रकट की जा रही है वह बिल्कुल बेबुनियाद और केवल काल्पनिक है। मैं नहीं सोचता कि कुछ दर्जन से अधिक मामले उच्चतम न्यायालय में पहुंचेगे और इन चन्द मामलों के पहुंचेंगे के भय से हमें ऐसा निष्क्रिय न हो जाना चाहिये कि इस मसले पर कोई निर्णय ही न करें। हर कल्पनीय दृष्टिकोण से आप इस पर विचार करें और इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि गम्भीर मामलों में जहां वस्तुतः उच्च न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय के निर्णय द्वारा अन्याय हुआ हो, उनकी अपील उच्चतम न्यायालय में आनी ही

चाहिये और सारवान विधि-प्रश्न की जो कठिन शर्त्त रखी गई है उसके अधीन ही आनी चाहिये। इस शर्त के अधीन अनावश्यक अपीलों के आने की कोई गुंजाइश ही न रहेगी। मैंने अपने संशोधन में दो और बातों पर भी जोर दिया है जिन पर विचार करना आवश्यक है। मैंने यह भी कहा है कि उच्च न्यायालय के अलावा और अन्य जो न्यायालय हैं जिनके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है, उनके निर्णयों के विरुद्ध भी उच्चतम न्यायालय में अपील की व्यवस्था यहां रहनी चाहिये। विधान मण्डल को अधिकार है कि वह कोई न्यायाधिकरण नियुक्त करे और उसे यह भी प्रावधान करने का अधिकार है कि उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधिकरण के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय में अपील न होगी। इन मामलों में यह होना चाहिये कि न्यायाधिकरण, अगर उन्हीं कारणों के आधार पर जिनका कि जिक्र ऊपर किया गया है, अपील को उच्चतम न्यायालय में लाने के लिये प्रमाण पत्र देता हो तो उसकी सुनवाई वहां होनी चाहिये। ऐसे मामलों की अपील के लिये उच्च न्यायालय तो प्रमाणपत्र देगा नहीं क्योंकि वह तो अपने ही निर्णय के विरुद्ध अपील के लिये प्रमाण पत्र दे सकता है। इसलिये ऐसे न्यायाधिकरणों के निर्णय के विरुद्ध भी अपील का प्रावधान होना चाहिये, जिनके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था न हो। ऐसे मामलों में सम्बन्धित न्यायाधिकरण से अपील के लिये प्रमाणपत्र लेना आवश्यक होगा। बाकी व्यवस्था के लिये अनुच्छेद 112 है ही। इसलिये आपराधिक मामलों में ऐसे न्यायाधिकरणों के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की व्यवस्था होनी चाहिये, जिसके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था नहीं है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो यहां एक बड़ी कमी रह जायेगी।

और फिर ऐसे भी कई मामले होंगे जो न आपराधिक होंगे और न व्यवहार विषयक। व्यवहार विषयक मामलों के अपील की व्यवस्था हमने अनुच्छेद 111 द्वारा कर दी है और आपराधिक मामलों के अपील की व्यवस्था अनुच्छेद 111-(क) के द्वारा की है, पर कभी-कभी ऐसे भी मामले होंगे जो न आपराधिक होंगे और न व्यवहार विषयक। उदाहरण के लिये न्यायालय के अवमान के मामले को ही लीजिये, जिसमें किसी पक्ष ने या किसी गवाह ने या किसी वकील ने या अन्य किसी ने न्यायालय का अवमान या अनादर किया हो। ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि अवमान करने वाली पार्टी पर अर्थ-दण्ड लगा कर या उसे कारावास दण्ड देकर मामले का सद्यः निपटारा कर दे। ऐसे अवमान सम्बन्धी महत्त्व के मामलों में भी जहां कोई सारवान विधि-प्रश्न निहित हो, उच्चतम न्यायालय में अपील की व्यवस्था होनी चाहिये। अभी-अभी न्यायालय के अवमान से सम्बन्ध रखने वाले दो मामले—एक तो उपनिवेश से और दूसरा इलाहाबाद हाईकोर्ट से—प्रिवी कौंसिल में पहुंचे थे जिनमें यह पाया गया कि विधि का गलत अर्थ लगा कर पक्षों को दण्डित किया गया था। प्रिवी कौंसिल का निर्णय देते हुए लार्ड ऐटकिंस ने न्यायालय के अवमान का सही अर्थ समझने में क्या-क्या भयंकर गलतियां की गई थीं, उसको खोल कर बताया था। ऐसे मामलों में विधि सम्बन्धी महत्त्व के प्रश्न और सिद्धान्त उठते हैं। इन मामलों में भी अपील की व्यवस्था होनी चाहिये, अगर उसमें कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो या जब कि मामला अपील के काबिल हो। अतः इन दो श्रेणियों के मामलों

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

को भी—न्यायालय के अवमान मामले और ऐसे मामले जिनमें न्यायाधिकार के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था न हो—यहां इस खण्ड में शामिल कर लेना चाहिये ताकि कोई कमी न रह जाये। हम अपना यह संविधान एक लम्बी अवधि के लिये बना रहे हैं इसलिये उसमें ऐसी कोई त्रुटि न रहने पाये जिसके लिये संविधान में शीघ्र ही संशोधन करना पड़े। व्यवहार विषयक मामलों में हमने तय कर रखा है कि बीस हजार की राशि के या मूल्य के मामलों की अपील हो सकेगी, पर आपराधिक मामलों के बारे में हम मनुष्य के जीवन या स्वातंत्र्य का कोई मूल्य नहीं निर्धारित कर सकते हैं। एक निर्दोष व्यक्ति को बिना अपील का मौका दिये हम फांसी पर नहीं लटका सकते हैं अगर एक भी निर्दोष व्यक्ति फांसी पर लटकाया जाता है या कारावास दण्ड पाता है, जो उसके अनाथ बच्चों की और उसके बेवा की आह न्याय के लिये क्रन्दन करेगी। मैं कहूंगा कि सभा को इस स्थिति का सामना करना चाहिये और गरीब आदमी को न्याय प्रदान करना चाहिये, जिसके जीवन का मूल्य सनकी लोग या अवधूत शायद बीस हजार से भी कम समझते हैं।

***अध्यक्ष:** डा. अम्बेडकर अब अपना संशोधन पेश करेंगे।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

> ''कि सूची 1 (पांचवें सप्ताह) के संशोधन नं. 23 और 24 के सम्बन्ध में, नवीन अनुच्छेद 111-क के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:
>
> '111-क (1) भारत राज्य-क्षेत्र में किसी उच्च न्यायालय द्वारा, दण्ड कार्यवाही में दिये हुये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश या दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि–
>
> (क) उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया है तथा उसको मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा
>
> (ख) उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण हेतु अपने पास मंगा लिया है तथा ऐसे परीक्षण में अभियुक्त व्यक्ति को दोष-सिद्ध ठहराया है और मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा
>
> (ग) उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है:
>
> परन्तु इस खण्ड के उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील, ऐसे नियमों के अधीन रह कर जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जाये, ही होगी।

(2) संसद विधि द्वारा ऐसी शर्त्तों और परिसीमाओं के अधीन, जो ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय को भारत राज्यक्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के दण्ड कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश अथवा दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी।' ''

[That with reference to amendment Nos. 23 and 24 of List I (Fifth Week) for the new article 111-A, the following be substituted:

''111-A. Appellate jurisdiction of Supreme Court with regard to criminal matters.—(1) The Supreme Court shall have power to entertain and hear appeals from any judgment, final order or sentence in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India—

(a) if the High Court has on appeal reversed the order of acquittal of an accused person and sentenced him to death; or

(b) if the High Court has withdrawn for trial before itself any case from any court subordinate to its authority and has in such trial convicted the accused person and sentenced him to death; or

(c) if the High Court certifies that the case is a fit one for appeal to the Supreme Court :

Provided that an appeal under sub-clause (c) of this clause shall lie subject to such rules as may from time to time be made by the Supreme Court and to such conditions as the High Court may establish or require.

(2) Parliament may by law confer on the Supreme Court any further powers to entertain and hear appeals from any judgement, final order or sentence in a criminal proceeding of a High Court in the territory of India subject to such conditions and limitations as may be specified in such law.'']

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

इसके सम्बन्ध में इस समय मैं कुछ नहीं कहना चाहता। इस संशोधन पर जो बहस होगी उसे सुन लेने के बाद, बहस खत्म होने पर जो कुछ कहना होगा कहूंगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जो संशोधन अभी डा. अम्बेडकर ने पेश किया है, उसे आशा है, सभा के सभी सदस्यों का समर्थन प्राप्त होगा। दण्डवृद्धि की पुनरीक्षण सम्बन्धी शक्तियों को छोड़ कर और अन्य सब बातों के सम्बन्ध में यह संशोधन सारत: वैसा ही है जैसा कि मेरा संशोधन (नं. 17) जिसकी सूचना मैंने दी थी। और सब बातों के सम्बन्ध में यह संशोधन बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मेरा संशोधन था और डा. अम्बेडकर को मैं बधाई देता हूं कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में बतौर समझौते के ऐसा उत्तम संशोधन लाने में वह समर्थ हुये हैं। संशोधन के गुणदोष की समीक्षा करते हुये मैं यह कहूंगा कि यह संशोधन सन्तोषजनक अवश्य है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखते हुये कहना होगा कि यह संशोधन न तो तर्कसंगत है और न सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक ही है। पहली बात तो यह है कि आपराधिक कानून-शास्त्र में अगर इस बात को आप एक स्वत: सिद्ध सिद्धान्त मानते हैं कि हर व्यक्ति को, जो किसी न्यायालय में दोष-सिद्ध ठहराया गया हो, कम से कम एक अपील का मौका मिलना ही चाहिये, तो अपने इस संशोधन से यह बात नहीं पूरी होती है। प्रस्तुत संशोधन के भाग (क) में सिर्फ उसी हालत में अपील का प्रावधान किया गया है, जबकि अभियुक्त की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया गया हो या उसे मृत्यु-दण्डादेश दिया गया हो। मैं विनम्रतापूर्वक यह पूछता हूं कि अगर कोई व्यक्ति विमुक्त कर दिया गया है, पर बाद की अपील में उसे आजीवन निर्वासन का या पांच साल के या एक ही दिन के कारावास का दण्ड मिला है, अथवा अर्थ-दण्ड मिला है, उसके लिये उच्च न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय में अपील की व्यवस्था यहां है? क्या हम यही मान लें कि जिन लोगों को मृत्यु-दण्डादेश मिलता है, केवल उन्हीं को निर्णय के विरुद्ध आपत्ति रहती है और केवल उन्हीं के लिये अपील का अधिकार आवश्यक होता है? मेरी तुच्छ राय में तो हर व्यक्ति को जिसे विमुक्ति पाने के बाद फिर अपील में कोई दण्डादेश प्राप्त हुआ है, निर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार स्वत: प्राप्त रहना चाहिये। मैं इस बात को मंजूर करता हूं कि अगर हजारों अपीलें उच्चतम न्यायालय के पास पहुंचती हैं, तो वहां अपीलों की भरमार हो जायेगी और उनको निपटाने में बड़ी कठिनाई होगी। पर साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि सभा को इस बात का ख्याल रहना चाहिये कि यहां एक न एक ऐसा प्रावधान अवश्य हो, जिसके आधार पर प्रत्येक दोष-सिद्ध व्यक्ति, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में कहीं भी, अपील कर सकता हो।

प्रस्तुत अनुच्छेद 111-क वैसा ही है जैसा कि व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 111 है। गत बार अनुच्छेद 110 पर बोलते हुये मैंने यह शिकायत की थी कि अनुच्छेद 111 के प्रावधान सन्तोषजनक नहीं है। क्योंकि जिस सिद्धान्त पर यहां इनको लिपिबद्ध किया गया है, वह सिद्धान्त न मुझे मान्य है और न सभा को ही। हमने लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया है। अनुच्छेद 8 के द्वारा मूल अधिकारों को स्वीकार किया है और अनुच्छेद 85 में हमने यह स्वीकार किया है कि विधि के समक्ष हर व्यक्ति को

समान अधिकार प्राप्त रहेंगे और सबको समान अवसर प्राप्त रहेंगे। अब इस अनुच्छेद 111 में जो प्रावधान रखे जा रहे हैं तथा जो प्रावधान 111-क में रखे जा रहे हैं वह सबके सब उस मूलभूत भावना के ही सर्वथा विपरीत हैं, जिसके आधार पर लक्ष्य सम्बन्धी प्रस्ताव को मूलाधिकारों को यहां लिपिबद्ध किया गया है, क्योंकि न्याय के मामले में या सबके प्रति समान व्यवहार प्रदान करने में, मृत्यु-दण्डादेश पाये हुये व्यक्ति में और उस व्यक्ति में जिसे कि एक ही दिन के कारावास का दण्ड मिला हो, हम उसी तरह कोई भेदभाव या अन्तर नहीं बरत सकते हैं जैसे कि व्यवहार विषयक मामले में बीस हजार की रकम का वाद खड़ा करने वाले अमीर और दो सौ रुपये की रकम का वाद खड़ा करने वाले गरीब में कोई अन्तर नहीं बरत सकते हैं। न्याय दोनों को ही पाना है, गरीब को दो सौ रुपये के बारे में और अमीर को बीस हजार के बारे में। सिद्धान्ततः इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। मैं यह अवश्य कहूंगा कि इन प्रावधानों को रखने में हमारा दृष्टिकोण सही नहीं है। जहां तक कि अवसर साम्य या व्यवहार साम्य देने का प्रश्न है, हमारे कानून ऐसे आदर्श पर आधृत होने चाहिये जिसके अनुसार हर व्यक्ति को विधि के समक्ष पहुंचने का और अपने वाद में न्याय पाने का समान अधिकार प्राप्त रहे। जैसा कि मैंने कहा है, प्रस्तुत अनुच्छेद में जो व्यवस्था रखी गई है वह न तो तर्कसंगत है और न सिद्धान्ततः सही है।

यहां खण्ड (ग) का जो परन्तुक है वह ऐसा है कि उसे यहां न रखना चाहिये था। व्यवहार विषयक मामले के सम्बन्ध में अनुच्छेद 111 में केवल इतना ही प्रतिबन्ध रखा गया है कि उच्च न्यायालय का यह प्रमाणित करना आवश्यक है कि मामला अपील के लायक है। पर आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील के लिये बहुत से प्रतिबंध—और मेरी समझ से आवश्यक प्रतिबन्ध—रख दिये गये हैं। यह कहा गया है कि उसके लिये उच्चतम न्यायालय कई नियम बनायेगा और उच्च न्यायालय कई शर्तें रखेगा, और इन नियमों और शर्त्तों के अधीन ही आपराधिक मामलों की अपील की जा सकेगी। व्यवहार विषयक मामलों की अपील के लिये तो ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा गया है। फिर मेरी समझ में नहीं आता है कि आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में ही ये सारे प्रतिबन्ध क्यों रखे जा रहे हैं। जब उच्च न्यायालय ही यह कह देता है कि मामला अपील के लायक है तो उसकी अपील उच्चतम न्यायालय को लेनी चाहिये। हम कौन हैं जो ऊपर से और शर्तें रखें? क्या हम अपने उच्च न्यायालय पर विश्वास नहीं कर सकते हैं, जो हम यह प्रावधान कर रहे हैं कि उच्च न्यायालय के यह कहने पर भी कि मामला अपील के लायक है, यह जरूरी होगा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये नियमों के अधीन और उच्च न्यायालय द्वारा रखी गई शर्त्तों के अधीन ही अपील की जा सकेगी? आखिर यह कोई ऐसा प्रश्न तो है नहीं कि इसमें किसी नागरिक को अधिकार देने की बात निहित हो। मैं उन लोगों के तर्क को समझ सकता हूं जो यह कहते हैं कि किसी आम-आदमी को यह अधिकार न प्राप्त रहना चाहिये कि उच्चतम न्यायालय में अपील लेकर जाये। मैं इस बात को भी समझ सकता हूं कि जहां तक कि प्रान्तीय स्वायत्त शासन का सम्बन्ध है, किसी नागरिक की सम्पत्ति एवं स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम निर्णय होना चाहिये। अगर कोई आदमी उच्चतम न्यायालय में अपने मामले को ले जाना ही चाहता है तो ऐसे मामलों की संख्या बड़ी ही सीमित होगी जिनकी अपील वह आगे ले जाना चाहता हो। उन सभी बातों को मैं समझ सकता हूं। पर साथ ही यह भी कहूंगा कि जब हमने व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अपील का अधिकार दिया है तो यह स्वाभाविक है कि आपराधिक मामलों में भी अपील का, अगर ज्यादा नहीं तो उतना ही अधिकार, जितना कि व्यवहार विषयक मामलों के सम्बन्ध में प्राप्त है, हमें देना चाहिये। आखिर हमें यह नहीं देखना है कि प्रावधान ऐसा हो कि उसके अधीन ज्यादा से ज्यादा अपील की जा सकें, बल्कि देखना यह है कि प्रावधान ऐसा हो कि न्याय प्राप्त हो सके और न्याय का समुचित प्रशासन हो सके।

मुझे अब एक बात और कहनी है और वह है उच्चतम न्यायालय की शक्तियों के सम्बन्ध में। अनुच्छेद 109, 110, 111, 111-क और 112—यही पांच अनुच्छेद हैं जिनके द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील की सारी व्यवस्था प्रावहित की गई है। अनुच्छेद 25 के द्वारा यह प्रत्याभूति दी गई है कि हर नागरिक को मूल अधिकार प्राप्त रहेंगे और इन मूल अधिकारों का संरक्षक बनाया गया है उच्चतम न्यायालय को। पर अपने संविधान में हम ऐसा कोई भी प्रावधान नहीं देखते हैं जिसको यह कहा गया हो कि अमुक रीति से और अमुक पद्धति के अनुसार उच्चतम न्यायालय इन शक्तियों का प्रयोग करेगा और नागरिकों को यह अधिकार दिलायेगा। अनुच्छेद 112 पर बहुत कुछ कहा जा चुका है और उस पर और कुछ कह कर मैं सभा का समय नहीं लूंगा, क्योंकि यह अनुच्छेद अब पास हो चुका है। पर इस प्रश्न के एक पहलू को मैं आपके सामने अवश्य रखूंगा और वह भी अपने ढंग से और विनम्रतापूर्वक ही। अगर उच्चतम न्यायालय को यह क्षेत्राधिकार दिया गया है और नागरिकों को उसके पास पहुंचने का अधिकार है और उनके अधिकारों को उच्चतम न्यायालय के द्वारा अवाप्त कराना है तो हमें इसके लिये उच्चतम न्यायालय को पूर्ण शक्तियों से सुसज्जित कर देना होगा। मैं नागरिकों को अधिकार देने की बात नहीं कह रहा हूं बल्कि उच्चतम न्यायालय को ही अधिकार देने की बात कह रहा हूं ताकि वह न्याय कर सके। अनुच्छेद 118 में हमने यह कहा है कि पूर्णत: न्याय करने के लिये जो भी आदेश निकालना आवश्यक होगा उसे उच्चतम न्यायालय निकाल सकता है। पर मैं यह भी जानता हूं कि प्रक्रिया सम्बन्धी बातों के बारे में उच्चतम न्यायालय अब भी वास्तविक रूप में उच्चतम न्यायालय नहीं है। यह सच है कि कुछ मामलों में जहां विधि द्वारा सर्वोच्च दण्ड दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय को अपील की सुनवाई का क्षेत्राधिकार दिया गया है। पर बहुत से मामलों में अपना तरीका बड़ा ही दोषपूर्ण है। उदाहरण के लिये जिस व्यक्ति को आजीवन निर्वासन का दण्ड मिला हो, उसे अपील का अधिकार नहीं है, पर उसकी विमुक्ति के विरुद्ध अपील का अधिकार दिया गया है।

अगर आप अनुच्छेद 15 को पढ़ें जिसे कि हम पास कर चुके हैं, तो देखेंगे कि जहां तक कि प्रक्रिया का सम्बन्ध है, यह विधान मण्डल के ही अधिकार की बात है कि वह जो चाहे प्रक्रिया निश्चित करे और इस मामले में उच्चतम न्यायालय को कोई दखल नहीं है। जब तक यह बात स्पष्ट रूप से यहां नहीं लिपिबद्ध कर दी जाती है कि जहां तक मनुष्य के जीवन का प्रश्न है, जहां तक कि नागरिक के अधिकार के अन्तिम रूप से विनिश्चित करने का प्रश्न है, उच्चतम न्यायालय को विधान मण्डल पर शक्ति प्राप्त रहेगी, तब तक हम यह नहीं कह सकते हैं कि नागरिकों को नवे अधिकार निश्चित रूप से अवाप्त ही रहेंगे। जहां तक कि नागरिक के स्वातन्त्र्य का सम्बन्ध है, उसकी रक्षा

तो होनी ही चाहिये, चाहे इसमें विधान मण्डल की मरज़ी के खिलाफ ही क्यों न जाना पड़े।

अनुच्छेद 109-क, 113-क और 114-क के सम्बन्ध में मैंने संशोधनों की सूचना यहां दी है और उस प्रसंग में इन संशोधनों पर भी अवश्य विचार होना चाहिये क्योंकि अन्ततोगत्वा जो अधिकार हम उच्चतम न्यायालय को देंगे उन्हीं पर जनता के अधिकारों का अस्तित्व निर्भर करेगा। जबकि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के आधार पर अब तक प्रिवी कौंसिल को यह सारी शक्तियां धारा 112 के अधीन प्राप्त रही हैं, तो यही शक्तियां उच्चतम न्यायालय तक को भी, जहां तक कि नैसर्गिक अधिकार का सम्बन्ध है, प्राप्त रहनी चाहिये ताकि वह पूर्णतः न्याय कर सके और किसी विशेष विधि या विशेष प्रावधान अथवा विनिमय का अनुगमन करके नहीं बल्कि उन सिद्धान्तों का अनुगमन करके जो सर्वविदित हैं, जो सर्वत्र मान्य हो चुके हैं और जो अपने महत्त्व की दृष्टि से बुनियादी सिद्धान्त माने जाते हैं। अपने सभी अधिकारों को हम तभी सुरक्षित रख सकते हैं जबकि हम उच्चतम न्यायालय के अधिकारों की परिधि को यथासम्भव पूर्णतः चढ़ा दें। जहां तक इस प्रस्तुत संशोधन का सम्बन्ध है मुझे इसके सिवाय और कुछ नहीं कहना है कि मुझे खुशी है कि हम लोगों का प्रयास सफल हुआ और उसके फलस्वरूप समझौते के रूप में यह प्रावधान सामने आया जो हम सबको स्वीकार्य है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डा. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है उससे व्यवहार विषयक अपीलें और आपराधिक अपीलें दोनों ही समान स्तर पर आ जाती हैं। मैंने अभी उस दिन यह दलील पेश की थी कि मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि फांसी पाने के पहले वह अपने मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय से करा सके। मृत्यु-दण्ड प्राप्त निर्धन व्यक्ति की क्या कठिनाइयां होती हैं यह मुझे अच्छी तरह याद है। मृत्यु-दण्ड प्राप्त कैदियों के साथ कोठरी में मैं रह चुका हूं और उनकी अनुभूतियों से मैं अच्छी तरह परिचित हूं। मुश्किल से कोई मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति ही अपने मामले की अपील उच्चतम न्यायालय के समक्ष ले जा सकेगा। यहां यह कहा गया है कि अगर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता हो कि मामला अपील के लायक है तो उच्चतम न्यायालय उसकी सुनवाई कर सकता है। पर मामले की अपील बिना उच्च न्यायालय के ऐसा कहे उच्चतम न्यायालय के पास नहीं पहुंच सकती है। मैं यह अनुभव करता हूं कि मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति जो गरीब है और जिसके पास ऐसा साधन नहीं है कि अपने मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में कर सके या उच्च न्यायालय से एतदर्थ प्रमाण-पत्र पा सके, उसे भी अपील की उच्चतम न्यायालय से सुनवाई कराने का अधिकार रहना ही चाहिये। किसी को भी फांसी पर न लटकाया जाये, जब तक कि उसके मामले की सुनवाई उच्चतम न्यायालय न कर ले। डा. अम्बेडकर का जो वर्तमान संशोधन है उसके अनुसार तो हजार में सिर्फ सौ ही यानी केवल 10 प्रतिशत हत्या सम्बन्धी अपीलों की सुनवाई अधिकारतः अभियुक्त करा सकेंगे और वह भी उस हालत में जब कि अभियुक्त उनका खर्च उठाने में सक्षम हो। इसलिये होगा यह कि सम्पन्न लोग ही आपराधिक मामलों की अपीलें उच्च न्यायालय में ले जा सकेंगे और गरीबों को तो उच्चतम न्यायालय से सुनवाई पाये बिना ही फांसी मिल

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

जायेगी। इसलिये गरीब आदमी तो इस संशोधन के पास हो जाने पर भी न्याय न प्राप्त कर सकेगा। अत: यद्यपि यह संशोधन समझौते के रूप में ही आया है, पर मेरा ख्याल यह है इसके अधीन भी मृत्यु-दण्ड प्राप्त निर्धन व्यक्ति न्याय नहीं पा सकेगा।

संशोधन के दूसरे हिस्से में यह कहा गया है कि: ''संसद विधि द्वारा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय को किसी निर्णय अथवा दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी इत्यादि, इत्यादि।' आशा है कि इस अनुच्छेद में व्यवहृत शब्दों से विधान-मण्डल यह शीघ्र ही समझ जायेगा कि हर मृत्यु दण्ड प्राप्त व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय में बिना किसी खर्च के अपील ले जाने का अधिकार प्राप्त रहना चाहिये। जब तक कि उच्च्तम न्यायालय उसकी अपील को नामंजूर न कर दे उसे फांसी न मिलनी चाहिये। मुझे इस पर और कुछ नहीं कहना है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों की अपील की सुनवाई का अधिकार दिये जाने के प्रश्न पर अब तक जो लम्बी बहस चलती रही है वह अन्ततोगत्वा अब इतने लम्बे अरसे के बाद समाप्त होती दिखाई दे रही है। आपने यहां यह बात कह रखी है कि उस मसले पर काफी बहस हो चुकी है और अब यहां उन्हीं तर्कों को दुहरा कर, जो कि एक बार पेश किये जा चुके हैं, सभा का समय न बर्बाद किया जाना चाहिये। डा. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं चन्द बातें ही कहना चाहता हूं और इस सिलसिले में आपके उक्त कथन का ख्याल रखूंगा।

सभा को मालूम होगा कि बहुत से सदस्यों में इस प्रश्न को लेकर कि आपराधिक मामलों की अपीलों की सुनवाई का अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया जाये या नहीं, बड़ा चांचल्य है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में सभा में स्पष्टत: मतभेद है और यहां दो राय है। एक वर्ग का कहना यह है कि संविधान द्वारा उस अधिकार को देना आवश्यक नहीं है बल्कि इसे संसद पर छोड़ देना चाहिये और वह विधि द्वारा, आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में जो भी अधिकार देना आवश्यक समझे, दे। पर हम जैसे सदस्यों का यह दृढ़ मत है कि जबकि व्यवहार-विषयक मामलों की अपील के लिये खुद संविधान में प्रावधान रखा जा रहा है तो फिर इसके लिये कोई औचित्य नहीं रह जाता है कि आपराधिक मामलों की अपीलों के बारे में ऐसा ही प्रावधान संविधान में न रखा जाये। हम लोग यह अनुभव करते हैं कि हमें ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे देश को यह ख्याल हो कि हम सम्पत्ति को मानव जीवन से अधिक महत्त्व देते हैं।

अब इस तमाम बहस-मुबाहिसे से जो निचोड़ निकलता है, वही मेरी समझ से इस संशोधन में रखा गया है जिसे डा. अम्बेडकर ने यहां पेश किया है। यहां के बहुसंख्यक सदस्यों की यही प्रधान मांग थी कि जिन मामलों में मृत्यु दण्ड का प्रश्न निहित हो, उनकी अपील का अधिकार तो संविधान में रहना ही चाहिये। मेरी भी अपनी पक्की राय ऐसी ही थी, पर इसमें आपत्ति यह थी कि इससे मृत्यु दण्ड सम्बन्धी अपीलों की उच्चतम न्यायालय में इतनी भरमार हो जायेगी कि हमें उनको निपटाने के लिये बहुत से न्यायाधीश नियुक्त करने होंगे। मैंने खास तौर पर मृत्यु दण्ड सम्बन्धी दो श्रेणियों के मामलों की ओर

सभा का ध्यान आकृष्ट किया था। एक व्यक्ति जिसे सेशन अदालत ने हत्या के अपराध से बरी कर दिया है, पर सरकारी वकील उस फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील करता है और वह न्यायालय सेशन अदालत के फैसले को उलट देता है और उसे मौत की सजा देता है। उस आदमी को अपील का अधिकार मिलना चाहिये। ऐसे हत्या सम्बन्धी मामलों में जहां उच्च न्यायालय ने अपने निचले न्यायालय के निर्णय को उलट दिया हो, अभियुक्त को उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार मिलना ही चाहिये।

मुझे खुशी है कि इस अनुच्छेद पर जो संशोधन डा. अम्बेडकर ने रखा है, उसमें मेरी इस बात का स्पष्ट प्रावधान कर दिया गया है। माननीय मित्रों से मैं यह अनुरोध करूंगा कि इस सम्बन्ध में जो पद-संहति व्यवहृत हुई है उसे वह अच्छी तरह पढ़ें। अगर उसे ठीक-ठीक समझ लिया जाये तो इस अनुच्छेद पर और अधिक बहस की कोई गुंजाइश नहीं रह जायेगी। इस प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 111-क में यह कहा गया है:

> ''भारत राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा दण्ड कार्यवाही में दिये हुये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश, या दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि–
>
> (क) उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की नियुक्ति के आदेश को उलट दिया है तथा उसको मृत्यु दण्डादेश दिया है, अथवा''

इसके अन्दर वह सभी मामले आ जाते हैं जिनके अपील के अधिकार पर हमने जोर दिया था। प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड 1(ख) में वह सभी मामले आ जाते हैं, जिनके सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को यह अधिकार रहना चाहिये कि परीक्षण के लिये अपने अधीन न्यायालय से वह मामले को अपने पास मंगा कर उस पर स्वत: निर्णय दे सके। उच्च न्यायालय में तो यह अधिकार स्वत: निहित है और अभिलेख न्यायालय के रूप में उसको इसका अधिकार प्राप्त है ही। ऐसे मामले में अगर अभियुक्त को मृत्यु दण्ड दिया जाता है, तो वस्तुत: यह पहला फैसला ही समझा जायेगा और ऐसी स्थिति के लिये अपील का जो प्रावधान यहां किया गया है वह ठीक ही है। प्रस्तुत अनुच्छेद के तीसरे पैरा में आपराधिक मामलों के बारे में यह कहा गया है कि अपीलें, ऐसे नियमों के अधीन रह कर जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जाये, होंगी। अगर इन नियमों और शर्तों के अनुसार अपील की जाती है, तो उच्चतम न्यायालय उसकी सुनवाई जरूर करेगा। इस व्यवस्था के अधीन ऐसे सभी मामलों की अपील की जा सकेगी, जिनके सम्बन्ध में हम संविधान में प्रावधान करना चाहते थे। और फिर इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में उच्चतम न्यायालय को इसके अलावा और अन्य शक्तियों को देने का भी प्रावधान किया गया है। यानी यह व्यवस्था कर दी गई है कि देश की भावी संसद विधि द्वारा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन जो कि ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें, उच्चतम न्यायालय, किसी उच्च न्यायालय के निर्णय, अन्तिम आदेश या दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी। इसके द्वारा आशा है उसे पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार भी प्राप्त हो जायेगा, जो उच्च न्यायालय को अभी प्राप्त है। इसलिये मैं तो यही समझ रहा हूं कि प्रस्तुत संशोधन एक व्यापक संशोधन है और मुझे सन्तोष है कि विरोधी पक्षों में उससे समझौता हो गया।

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

मेरा ख्याल है कि कानून पेशा के लोग, जिस पेशे से सम्बन्ध रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है, डा. अम्बेडकर के प्रति कृतज्ञ होंगे कि उन्होंने इस सम्बन्ध में समझौते की ऐसी भावना यहां प्रदर्शित की है। मैं ऐसा समझता हूं, श्रीमान्, कि संशोधन का जो स्वरूप है उससे हमारी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं और उसे सभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना चाहिये।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, जैसा कि मैंने अभी उस दिन कहा है, अनुच्छेद 110 और 112 के प्रावधानों को देखते हुये, जिन्हें हम स्वीकार कर चुके हैं, अब कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है कि उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील के लिये और प्रावधान रखे जाये। व्यक्ति के जीवन तथा स्वातन्त्रय के सम्बन्ध में यहां बहुत कुछ कहा गया है। मेरा ख्याल है कि व्यवहार विषयक मामलों की अपील के लिये जो प्रक्रिया रखी गई, वही प्रक्रिया आपराधिक मामलों की अपील के बारे में रखने की जो बात यहां कही जा रही है वह किसी गलतफहमी की वजह से ही कही जा रही है। आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में तो ऐसा होता है कि जो मामले संगीन होते हैं वह पहले दौरा सुपुर्द करने वाले मजिस्ट्रेट के सामने पेश किये जाते हैं। मजिस्ट्रेट शहादत लेता है और बचाव पक्ष का वकील गवाहों के बयानों को पुलिस की डायरी से उतार सकता है और गवाहों से पुलिस के सामने दिये हुये उनके बयानों के बारे में जिरह कर उनके बयानों को झूठा सिद्ध कर सकता है। एक सीढ़ी तो यह होती है जहां अभियोग पक्ष के गवाहों से जिरह की जाती है, उनके बयानों की सच्चाई परखी जाती है और गवाह सच्चा है या झूठा, इसके बारे में जिरह की जाती है। यहां बचाव पक्ष को यह बताने का काफी मौका मिलता है कि मामला बिल्कुल झूठा है, बेबुनियाद है और प्रामाणिक प्रमाण न मिलने पर वह अभियुक्त को बरी करने की मांग कर सकता है। और उसके बाद उस मजिस्ट्रेट के पास से मामला आता है, सेशन न्यायाधीश के समक्ष यहां भी बचाव पक्ष को गवाहों से जिरह करने का अधिकार रहता है। बचाव पक्ष यहां भी गवाहों ने जो बयान पुलिस के सामने और जो बयान मजिस्ट्रेट के सामने दिये हों उनको मांग सकता है और गवाहों से जिरह कर सकता है जो कुछ कहना हो कह सकता है। बचाव पक्ष को पूरा मौका यहां दिया जाता है कि अदालत के सामने अपने बचाव के लिये जो कुछ भी कहना हो, कहे। मुकदमे की सुनवाई वहां पंच करते हैं या अन्य सहायक लोग जिन्हें न्यायाधीश नियुक्त करता है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य के कहने का मूल निचोड़ यह है कि अपील का अधिकार न देना चाहिये। सभा के समक्ष इस आशय का तो कोई संशोधन पेश नहीं है कि अपील का अधिकार न होना चाहिए इसलिये मैं नहीं समझता कि वक्ता के इस भाषण से सभा को कोई भी सहायता मिल सकती है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** मेरा कहना यह है कि प्रस्तुत संशोधन के उपखण्ड (ग) और खण्ड (2) का तो मैं समर्थन करता हूं, पर उसके उपखण्ड (क) और (ख) के मैं विरुद्ध हूं। मैं यह कह रहा हूं कि अभियुक्त को काफी मौका दिया जाता है कि पहले तो वह सेशन अदालत में विरोधी पक्ष के गवाहों से पूरी तरह जिरह कर सके और

अपनी सारी बातें उस अदालत के सामने कहे और उसके बाद उसे यह भी हक है कि उच्च न्यायालय में अपील करे और वहां भी अपने बचाव के लिये जो कुछ भी कहना हो कहे। यहां उपखण्ड (क) में यह कहा गया है कि जिस मामले में कि अधीन न्यायालय ने अभियुक्त को बरी कर दिया हो, पर अपील करने में उच्च न्यायालय उस फैसले को उलट दे, उनमें उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिए अभियुक्त को अधिकार रहेगा। मेरा कहना यह है कि न सिर्फ अभियुक्त को ही निर्णय के विरुद्ध शिकायत हो सकती हे, बल्कि दूसरे पक्ष को भी उसके विरुद्ध शिकायत हो सकती है। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि एक बच्चे को कोई आम रास्ते पर कत्ल कर देता है। बच्चे की मां को भी अभियुक्त के बरी करने के फैसले के खिलाफ शिकायत होगी। अगर अभियुक्त को यह अधिकार दिया जाता है कि दोषी करार दिये जाने पर वह फैसले के खिलाफ अपील कर सकता है, तो बच्चे की मां को भी यह अधिकार है कि वह न्यायालय के समक्ष जाकर यह निवेदन करे कि: ''इस हत्याारे ने मेरे बच्चे की हत्या की है। उसके खिलाफ मुझे शिकायत है। राज्य की स्थिरता के लिये और ऐसे अपराधों को रोकने के लिये यह जरूरी है कि उसे फांसी पर लटकाया जाये।'' यह कहना बिल्कुल गलत है कि केवल अभियुक्त को ही निर्णय के विरुद्ध शिकायत हो सकती है इसलिये उसे अपील का अधिकार मिलना चाहिये। बच्चे की मां के पक्ष में भी यह दलील पेश की जा सकती है और उतने ही जोर के साथ जितने कि अभियुक्त के पक्ष में, कि बच्चे की मां की शिकायत सही है और उसे उच्चतम न्यायालय में जाकर यह कहने का अधिकार होना चाहिये कि इस हत्यारे को फांसी मिलनी ही चाहिये।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** अधीन न्यायालय द्वारा अभियुक्त के बरी करने के फैसले के खिलाफ की गई अपील की सुनवाई का अधिकार उच्च न्यायालय को प्राप्त है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** मृत बच्चे की मां को राज्य से यह मांग करने का कि हत्यारे के बरी करने के फैसले के खिलाफ अपील का उसे हक होना चाहिये, उतना ही अधिकार है, जितना कि अभियुक्त को दण्ड के फैसले के विरुद्ध अपील की मांग का। इसलिये यह कहना सही नहीं है कि अभियुक्त को, दोषसिद्धि के बाद कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार तो मिलना ही चाहिये और अगर वह पहली बार हत्या का अपराधी सिद्ध किया गया है, तो प्रस्तुत उपखण्ड (क) के अनुसार उसे निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार होना चाहिए। इस तर्क में मुझे तो कोई तथ्य या बल दिखाई नहीं देता है। इस सम्बन्ध में मुझे एक और भी बात कहनी है जो यह है। व्यक्ति के जीवन और स्वातन्त्र्य को लेकर बहुत सी बातें कही जा रही हैं। जब यहां संसद द्वारा उच्चतम न्यायालय को अधिकार दिये जाने के प्रश्न पर बहस चल रही थी, तो माननीय मित्र श्री लारी ने यह फरमाया था: ''संसद पर छोड़ने का तो मतलब होता है कि आप इसे अधिकारारूढ़ दल पर छोड़ते हैं, मन्त्रिमण्डल पर छोड़ते हैं या प्रधानमंत्री पर छोड़ते हैं।'' एक ऐसे देश में जहां आम सड़क पर स्त्रियों पर बलात्कार किया जाता है, जहां दो चार रुपयों के आभूषण के लिये निरीह बच्चों की हत्या कर दी जाती है, जहां बेचारा मोची इसलिये कत्ल कर दिया जाता है कि दो पैसा उसे ग्राहक देता है पर वह आग्रह करता है कि चार पैसा पाने पर; यहां खेतों की सिंचाई के पानी को लेकर खून का होना स्वाभाविक बात है, आप ऐसी ऊंची बातें कहें यह कुछ अच्छा नहीं लगता।

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

यहां की वास्तविक स्थिति की आप उपेक्षा नहीं कर सकते, उसको ध्यान में रख कर हमें आगे बढ़ना होगा। आखिर न्याय का सम्बन्ध हमारे जीवन-दशा से ही तो है। जनता की इच्छा ही न्याय है और संसद तो जनता की इच्छा को व्यक्त करने का एक माध्यम मात्र है। मैं यह भी कहूंगा कि ऐसे लोगों को लेकर एक स्थिर समाज की रचना कभी नहीं की जा सकती, जो या तो आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान है या फिर आवश्यकता से अधिक बुद्धू है। ऐसे ही लोग जो ऊंचे सिद्धान्तों की बातें करते हैं, समाज के स्थैर्य की, राज्य के स्थैर्य की कभी परवाह नहीं करते। उदाहरण के लिये आप आस्ट्रिया की दशा को ही लीजिये। यहां कितने ही वैज्ञानिक हैं, कितने ही कानून विशेषज्ञ हैं, कितने ही दार्शनिक हैं, कितने ही विद्वान् हैं और प्रतिभासम्पन्न लोग है; पर ये लोग आपस में किसी बात में सहमत ही नहीं होते, सदा इनमें मतभेद ही रहता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि तमाम इतिहास में यही एक ऐसा देश रहा है जहां कभी एक स्थिर समाज न बन सका, जहां कभी शांति न रही, गोकि इस देश को कुछ ऐसे व्यक्तियों को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है, जो विज्ञान एवं दर्शन के क्षेत्र में दुनिया के श्रेष्ठतम पुरुष माने गये हैं। और ऐसे भी लोग आपको मिलेंगे जो इतने बुद्धिशून्य हैं कि इसे नहीं समझ पाते हैं कि स्थिति का तकाजा क्या है।

***अध्यक्ष:** मेरा ख्याल है, माननीय सदस्य मूल बात से बहुत दूर चले जा रहे हैं।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** सो, मेरा कहना यह है कि न्याय का जो प्रश्न है, व्यक्ति के जीवन या स्वातन्त्र्य का जो प्रश्न है, उसका देश की वस्तुस्थिति से, जीवन-दशा से बहुत गहरा सम्बन्ध है और इस प्रश्न पर विचार करते समय आप इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (2) के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि अधीन न्यायालयों से जो मामले उच्च न्यायालय अपने पास मंगाता है, उनमें अधिकांश मामले अभियुक्त के आवेदन करने पर ही वह मंगाता है। विरले ही मामलों में ऐसा होता है कि अभियोग-पक्ष के आवेदन पर उच्च न्यायालय कोई मामला अपने पास मंगाता हो। इस सम्बन्ध में हमेशा दलील पेश की जाती है कि अधीन न्यायालय में अगर मामले की सुनवाई होती है तो डर है कि वहां न्याय न हो सकेगा। आवेदन पर मामला अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय के पास पहुंचता है। वह मामला इसी आधार पर वहां मंगाया जाता है कि अधीन न्यायालय वाले इलाके में या उस न्यायालय में स्थिति ऐसी है कि वहां न्याय न हो सकेगा, यह आशंका सही है। इसलिये उच्च न्यायालय जो मामले को अपने पास मंगाता है, वह इसीलिये कि सम्बन्धित पक्ष को विश्वास-भाव पैदा हो कि मामले में वहां न्याय होगा। मैं यह कहता हूं कि जब मामला उच्च न्यायालय में इसीलिये मंगाया जाता है कि वहां मामले में न्याय हो सकेगा और सम्बन्धित पक्ष में न्यायालय के प्रति विश्वास भावना उत्पन्न होगी और जब उच्च न्यायालय का न्यायाधीश उस मामले की हर बात को अच्छी तरह देख लेता है, सभी प्रश्नों पर वहां बहस हो जाती है, गवाहों से जिरह कर ली जाती है, उनको ठोक बजा कर देख लिया जाता है तो फिर उस मामले को पुन: उच्चतम न्यायालय में सुनवाई हो इसका मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता। आखिर उच्चतम न्यायालय उस मामले में करेगा ही क्या? वह न्याय के सिद्धान्त पर ही विचार करेगा। पर जैसा कि मैं कह चुका हूं, जीवन एक गतिशील वस्तु है। उसमें और कोरे सिद्धान्त में बड़ा अन्तर है। अभियुक्त

के लिये ही न्याय आवश्यक नहीं है बल्कि प्रति-पक्षी को भी, जिसे अभियुक्त से शिकायत है, न्याय पाने की वैसी ही आवश्यकता है जैसी कि अभियुक्त को। न्याय की आवश्यकता सब को है; राज्य न्याय इसलिये चाहता है कि उसकी स्थिरता बनी रहे, प्रतिपक्षी न्याय चाहता है, बदला पाने के लिये और समाज न्याय चाहता है इसलिये कि न्याय के भय से लोग अपराध न करें। यह सभी बातें महत्त्व रखती हैं और न्याय व्यवस्था पर विचार करने में हमें इनका ध्यान रखना होगा। देश की वर्तमान स्थिति के अनुसार इन सभी बातों का ख्याल रखते हुये, मैं यह कहूंगा कि आपराधिक अपीलों को उच्च न्यायालय से आगे ले जाने की जरूरत नहीं है और इन मामलों में इस न्यायालय के फैसले को ही हमें आखिरी फैसला करार देना चाहिये।

प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखण्ड (ग) का मैं समर्थन करता हूं। यह एक महत्त्वपूर्ण उपखण्ड है। इसके अन्दर बहुत से मामले आ जायेंगे जिनकी अपील आगे हो सकेगी। मैं कहूंगा कि संशोधन के उपखण्ड (ग) को रखने में बड़ा औचित्य है। इस उपखण्ड का तथा अनुच्छेद के खण्ड (2) का समर्थन कोई भी करेगा। इसके पक्ष समर्थन में मैं अमेरिकन विधान के एक प्रावधान को पेश करूंगा जो वहां के उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में है। वह यों है:

> ''अनुच्छेद 3—उपखण्ड (2)—उन सब मामलों में जिनका प्रभाव राजदूतों, सरकारी मन्त्रियों और वैदेशिक प्रतिनिधियों पर पड़ता हो, तथा उन मामलों में जहां राज्य एक पक्ष के रूप में होगा, उच्चतम न्यायालय को आरम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा। अन्य सब मामलों में, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, उच्चतम न्यायालय को विधि एवं तथ्य दोनों के ही सम्बन्ध में, ऐसे अपवादों के साथ तथा ऐसे आवेदनों के अधीन जो इस सम्बन्ध में न्यायालय करे, अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा।''

अमेरिकन विधान में यह कहा गया है श्रीमान्, कि न्यायपालिका ही वहां सर्वप्रधान है, पर ब्रिटिश विधान में संसद को प्रधानता दी गई है और अपने वर्तमान संविधान में कार्यपालिका को प्रधानता दी गई है। इसलिये अगर अमेरिका में, जहां कि न्यायपालिका को प्रधानता प्राप्त है, ऐसा प्रावधान है कि उच्चतम न्यायालय की शक्तियां संसद निर्मित विधि के अधीन प्रभावी होंगी, तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि यहां हम अमेरिकन विधान से आगे क्यों जायें। वर्तमान समय में अमेरिका में उच्चतम न्यायालय को किस तरह का अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है, इस पर प्रो. जिंक की एक पुस्तक से, जो कि उन्होंने वहां के विधान के सम्बन्ध में लिखी है, मैं एक अंश पढ़ कर सुनाता हूं:

''अमेरिकन इतिहास के विभिन्न कालों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का विस्तार भिन्न-भिन्न रहा है, पर साधारणत: प्रवृत्ति यही रही है कि इस क्षेत्राधिकार को और सीमित किया जाये। जब श्री डब्ल्यू.एच. टैफ्ट वहां मुख्य न्यायाधीश थे तो उन्होंने यह देखा कि न्यायालय का काम बहुत पिछड़ा हुआ था और उन्होंने मामले को और शीघ्रतापूर्वक निपटाने के लिये उपाय निकाले। उनकी सिफारिशों पर अमल करते हुए कांग्रेस ने उन मामलों का दायरा और भी घटा दिया, जिनकी अपील अधिकारत: वहां के नागरिक कर सकते थे और इस व्यवस्था से वहां के वकीलों को बड़ी मायूसी हुई थी, जिनका कहना यह था कि प्रत्येक

[श्री कृष्णचन्द शर्मा]

ऐसा मामला जो साधारण से अधिक महत्त्व रखता हो उसकी सुनवाई देश के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कराने के लिये अपील का अधिकार मिलना ही चाहिये। इस समय दो ही तरह के मामलों की अपील अमेरिकन राज्यों के उच्चतम न्यायालयों या वहां के सर्किट कोर्टों से बाहर किसी अन्य न्यायालय में अधिकारत: की जा सकती है। (1) एक तो ऐसे मामले जिनमें यह कहा गया हो कि देश के संविधान के किसी प्रावधान की या उसके अधीन किये गये संधिपत्रों की अथवा किसी कानून की अवहेलना की गई है या उनके अनुसार जो वादी को अधिकार प्राप्त है उससे वह वंचित किया गया है। (2) ऐसे मामले जिनमें यह कहा गया हो कि वहां के किसी राज्य के संविधान का कोई प्रावधान या विधि ऐसी जो राष्ट्रीय संविधान के, या उसके अधीन की गई सन्धियों या, उसके अधीन पास की हुई किन्हीं विधियों से विपरीत जाती है।''

अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के सम्बन्ध में यह स्थिति है, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। जैसा कि मैंने कहा है यह एक मानी हुई बात है कि अमेरिकन विधान में न्यायपालिका को प्रावधान दिया गया है। जिस देश के विधान में न्यायपालिका को प्राधान्य दिया गया है, वहां की है यह वस्तुस्थिति, जिसका किताब से मैंने उद्धरण दिया है। इसलिये, हमारे देश में श्रीमान्, जहां की हालत ऐसी है कि उसमें यह अपेक्षित है कि मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाये और अपराधों की रोकथाम की जाये, किसी अपीलीय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय को वह सब शक्तियां क्यों दी जायें जो संशोधन के उपखण्ड (क) तथा (ख) में प्रावहित की गई हैं। हां, संशोधन के उपखण्ड (ग) और खण्ड (2) के प्रावधानों का मैं खुशी से समर्थन करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सभा के सभी वर्गों ने इस संशोधन का इतना गुणगान किया है कि मेरी इच्छा नहीं होती है कि उसके सम्बन्ध में मैं कोई भी ऐसी बात कहूं जो उसका विरोध करने वाली प्रतीत हो। कुल मिला कर यह स्वीकार करना होगा कि इसके सम्बन्ध में दी हुई वक्तृतायें यही संकेत देती हैं कि डा. अम्बेडकर के इस संशोधन को सभा का समर्थन प्राप्त है। फिर भी मैं यह अनुभव करता हूं कि यह मेरा कर्त्तव्य है कि दो एक बातों की मैं यहां चर्चा करूं ताकि यह मालूम हो जाये कि इस अनुच्छेद 111-क का ठीक-ठीक दायरा क्या है।

संशोधन का जो अन्तिम अंश है वह दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411-क की प्रतिलिपि मात्र है, जो उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील से सम्बन्ध रखता है। प्रस्तुत अनुच्छेद के इस खण्ड के अनुसार ऐसे नियमों के अधीन जिन्हें उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जायें, की जा सकेगी। प्रस्तुत उपखण्ड (ग) के अधीन उच्चतम न्यायालय को अधिकार होगा कि अपील के लिये जो भी प्रतिबन्ध या शर्त चाहे वह प्रावहित करे। उसी तरह उच्च न्यायालय को भी इस सम्बन्ध में यह अधिकार होगा कि अपील के

बारे में जो भी शर्त आरोपित करना वह ठीक समझे, आरोपित कर सकता है। मैं यह समझ पाता हूं, श्रीमान्, यह खण्ड आखिर संविधान के अनुच्छेद 112 से आगे हमें किस तरह ले जाता है। अनुच्छेद 112 के अधीन उच्चतम न्यायालय को इसका अवाध अधिकार प्राप्त है कि किसी आपराधिक मामले की अपील के लिये वह स्वविवेक से विशेष अनुमति प्रदान कर सकता है। अनुच्छेद 112 में आपराधिक मामलों की अपील के बारे में विशेष अनुमति प्रदान करने का जो अधिकार उच्चतम न्यायालय को दिया गया है, उसमें ऐसे कोई प्रतिबन्ध नहीं रखे गये हैं जैसा कि इस खण्ड में हैं। अब मान लीजिये, अपने अधिकारों के प्रयोग के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय कुछ शर्तें रख देता है और उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र प्रदान करने के अधिकार के बारे में कुछ प्रतिबन्ध आरोपित कर देता है। यहां क्या यह अभिप्राय है कि उच्च न्यायालय उन शर्तों के अधीन ही प्रमाणपत्र देगा जिन्हें उच्चतम न्यायालय आरोपित करेगा? मामला अपील के लायक है ऐसा प्रमाण पत्र देने का अधिकार दिया गया है उच्च न्यायालय को, पर अपील के सम्बन्ध में क्या शर्तें अपेक्षित होंगी, इसे उच्चतम न्यायालय निश्चित करेगा। हम यही मानते हैं कि उच्चतम न्यायालय इसी आशय का नियम बनायेगा कि उच्च न्यायालय उन्हीं मामलों की अपील के लिये प्रमाणपत्र देगा जहां कोई खास अन्याय हो गया हो या जूरी को गलत संकेत दिया गया हो या ऐसी गवाही गुजरने दी गई हो, जो नियमतः मान्य नहीं हो सकती थी या ऐसी ही अन्य कोई त्रुटि रही हो। अब सवाल यह है कि क्या हम ऐसा समझ लें कि अनुच्छेद 112 के अधीन प्राप्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय पर इन नियमों की कोई बंदिश न होगी, जो उच्च न्यायालय के लाभ के लिये यहां उपखण्ड (ग) में रखे गये हैं? यह एक ऐसी बात है, जिस पर आशा है, डा. अम्बेडकर अवश्य सभा को प्रकाश देंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रस्तुत अनुच्छेद के उपखण्ड (ग) और अनुच्छेद 112 इन दोनों के प्रावधानों को लेकर क्या स्थिति रहेगी, इस पर वह कृपया प्रकाश डालेंगे। अगर इन दोनों में अन्तर केवल यही है कि एक के अनुसार उच्च न्यायालय के प्रमाणपत्र के आधार पर अपील की जा सकती है और दूसरे के अनुसार उच्चतम न्यायालय विशेष अनुमति प्रदान करने पर मामले की अपील की जा सकती है, तो मेरी समझ से यह सर्वथा निष्प्रयोजन है। यह बात तो कल्पना से परे है कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र दिये जाने के सम्बन्ध में तो उच्चतम न्यायालय यह कहे कि इन-इन शर्तों के पूरा होने पर ही वह न्यायालय प्रमाणपत्र दे सकेगा और अपने खुद अनुच्छेद 112 के अधीन विशेष अनुमति प्रदान करने का अनियंत्रित अधिकार रखे। यह एक ऐसी बात है जिसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कठिनाई मालूम पड़ती है।

और फिर उपखण्ड (क) और (ख) के सम्बन्ध में भी स्थिति यह है। उपखण्ड (क) में कहा गया है:

''उच्च न्यायालय ने अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया है या उसको मृत्यु दण्डादेश दिया है।'' यह खण्ड लागू होगा ऐसे मामले के लिये, जिसमें उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायासन ने जूरी द्वारा सुनवाई किये गये मामले में सेशन न्यायालय के निर्णय को उलट दिया है। अभी हाल में ठीक ऐसा ही एक मामला मद्रास के उच्च न्यायालय में चला था। उसमें वहां के एक पूर्ण न्यायासन ने हस्तक्षेप करने

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

से इन्कार कर दिया था और प्रिवी कौंसिल ने निर्णय को उलट दिया और मामला फिर उच्च न्यायालय के पास आया और अन्ततोगत्वा वहां अभियुक्त व्यक्ति को बरी कर दिया गया। यह एक ऐसा मसला है कि इसमें उच्च न्यायालय में अपील की व्यवस्था रखी जा चुकी हैं। जहां तक कि उपखण्ड (ख) का सम्बन्ध है, उसके अधीन ऐसे ही मामलों की अपील होगी जिन्हें अपने अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय ने सुनवाई के लिये अपने पास मंगवाया हो। जहां तक कि इस उपखण्ड के अन्दर आने वाले मामलों का सम्बन्ध है, उनमें ऐसे की अपील, जिनका निर्णय एक न्यायाधीश ने किया हो, सीधे उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी पर अन्य मामलों में शायद अपील की सुनवाई पहले उच्च न्यायालय करेगा और उसके बाद ही उनकी अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकेगी।

यही चन्द विचारणीय बातों द्वारा जिनसे प्रेरित होकर डा. अम्बेडकर द्वारा कल उपस्थित किये गये संशोधन का समर्थन करना मुझे उपयुक्त प्रतीत हुआ। यह बात नहीं है कि मैं अपराधियों के प्रति बहुत निर्मम हूं या मुझे ऐसे व्यक्तियों के मामले के प्रति कोई सहानुभूति ही नहीं है, जिन पर हत्या का अभियोग लगाया गया है। जब इन सभी बातों की व्यवस्था संसद आपराधिक विधियों का पुनरीक्षण करते समय कर सकती है, तो यहां संविधान में भी एक अनुच्छेद के द्वारा उन सभी बातों की पर्याप्त व्यवस्था की जा सकती है। यही एकमात्र कारण है कि जब कुछ दिन पूर्व एक अन्य अनुच्छेद पर विचार हो रहा था तो मैं उतना ही कह कर बैठ गया कि उस मसले पर सम्भवत: संसद आगे विचार कर लेगी। अस्तु जो भी हो, जिस व्यवस्था के सम्बन्ध में यहां यह समझा गया हो कि इससे देश के अपराधियों का भला होगा, उस पर मैं कोई असहमतिसूचक बात नहीं कहना चाहता और फिर हमारे पास इसके ठीक-ठीक आंकड़े भी उपलब्ध नहीं हैं कि ऐसे कितने मामले हैं, जिनमें प्रथम न्यायालय के विमुक्ति आदेश को उच्च न्यायालय ने उलटा है। इन सभी बातों पर संसद आम विधान बनाते समय औचित्यपूर्वक विचार कर सकती है।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य राज्यसंघ): अध्यक्ष महोदय, मेरे कतिपय मित्रों को मेरी इस अभिव्यक्ति से सम्भवत: आश्चर्य और निराशा होगी कि इस समय समाज की वर्तमान स्थिति में, संविधान में इस आशय का प्रावधान रखना वांछनीय एवं बुद्धिसंगत होगा इसमें मुझे सन्देह ही है।

मैं जानता हूं कि लोगों का यह दृष्टिकोण कि अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय में अपने बचाव का पूरा मौका मिलना चाहिये, पर्याप्त औचित्य रखता है। उसके अपील सम्बन्धी अधिकार पर किसी तरह का प्रतिबन्ध न लगना चाहिये और न उस पर कोई क्षति ही पहुंचनी चाहिये। मैं यह भी समझता हूं कि यह सिद्धान्त एक ठोस और सही सिद्धान्त है कि अभियुक्त व्यक्ति को तब तक हमें सर्वथा निर्दोष ही समझना चाहिये कि जब तक समुचित साक्ष्य के आधार पर उसकी निर्दोषिता अन्यथा न प्रमाणित कर दी गई हो। परन्तु इस सम्बन्ध में एक दूसरा पक्ष भी है जिसका सम्बन्ध वादी से है। अगर आप वादी की निगाह से इस पर विचार करें, उस परिवार की निगाह से उस पर विचार करें, जो हत्यारे के कुकृत्य के फलस्वरूप अपने किसी प्रिय परिजन से हाथ धो बैठा है, तो अवश्य ही यह व्यवस्था आप को सर्वथा क्रूर ही प्रतीत होगी कि अपील की आड़ में अभियुक्त

व्यक्ति को न्याय टालने का और न्याय के निष्ठुर हाथों से बचते रहने का मौका दिया जाये। यह सभी जानते हैं कि गांधी हत्या-काण्ड के मुकदमे में निर्णय सुनाने में जो विलम्ब हो रहा है उसको लेकर देश की आम जनता में क्या अनुभूति है। यह मामला अभी भी विचाराधीन है। इस मामले के गुण-दोष के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह रहा हूं। पर इस सम्बन्ध में यह कहते हुये मैं आम आदमी की अनुभूति ही व्यक्त कर रहा हूं कि एक ऐसे मामले में जहां दिन दहाड़े सैकड़ों व्यक्तियों के सामने हत्या हुई, आज बरसों से मुकदमा चल ही रहा है, अब तक उसका फैसला न हो पाया। आपराधिक मामलों में हमें इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि न्याय का होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि जल्द न्याय होना चाहिये और यह प्रतीत भी होना चाहिये कि न्याय किया गया है।

मैं यह निवदेन करूंगा कि आपराधिक मामलों में न्याय के तीन उद्देश्य होते हैं। न्याय इस अभिप्राय से किया जाता है कि एक तो अपराधी को दण्ड मिले, दूसरे इसलिये कि अपराध की रोक हो और तीसरा इसलिये कि अपराधी में सुधार हो। मेरा यह कहना है कि जहां तक कि अपील सम्बन्धी अधिकार का सम्बन्ध है, इसके बारे में एक विचारधारा यह भी है कि अपील का अधिकार देने का यह मतलब होता है कि न्याय में विलम्ब करने का अधिकार दिया जा रहा है। यह अधिकार तो कुछ वैसा ही अधिकार है जिसका उपयोग संसदीय सदस्य करते हैं। उन्हें संसद में बोलने का, प्रस्तावादि पेश करने का अधिकार प्राप्त है, जिसके द्वारा वह कभी-कभी कानून निर्माण में अड़ंगा लगा कर विलम्ब पैदा करते हैं। मैं यह बताऊं कि अपील विषयक अधिकार से न्याय के दण्ड-मूलक प्रयोजन की पूर्ति में भले ही अंततोगत्वा कुछ अंतर न पड़े, पर न्याय के सुधारमूलक या निवारण-मूलक प्रयोजनों की पूर्ति में इससे अवश्य ही कुछ हद तक क्षति पहुंचती है। इसलिये उचित यही है कि हमें प्रश्न के इस पहलू की अपेक्षा न करनी चाहिये। हम जानते हैं कि वर्तमान न्याय-प्रशासन व्यवस्था, जिसे हमने विरासत के रूप में प्राप्त किया है, वह देश पर अंग्रेजों के द्वारा जबरदस्ती लादी गयी थी। इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है पर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इसमें तीन बड़े दोष हैं। पहला तो यह कि यह व्यवस्था बड़ी ही खर्चीली है, दूसरा यह कि इसमें न्याय पाने में देर बहुत लगती है और तीसरा यह कि इसमें झूठी और नकली गवाही की बड़ी गुंजाइश रहती है। इसलिये बुनियादी सवाल, मूलभूत सवाल जो हमारे सामने है वह सिर्फ यही नहीं है कि अभियुक्त व्यक्ति को, जिसे मौत की सजा दी गई हो, उच्चतम न्यायालय में अपने मामले की अपील का अधिकार मिलना चाहिये, पर एक बुनियादी सवाल यह भी है कि एक न एक मौके पर—वह मौका आ चुका है या आगे चल कर आयेगा, यह भी एक विवादास्पद विषय है—हमें अपने कानूनों में सुधार के काम को, समूची न्याय-प्रशासन व्यवस्था में सुधार के काम को हाथ में लेना ही होगा। यह एक बड़ा ही संगीन सवाल है। अब, अगर हम सरकारी संशोधन—इसे हम इसी नाम से पुकारना पसन्द करेंगे—का विवेचन करते हैं तो यह पाते हैं कि नवीन अनुच्छेद के उपखण्ड (क) और (ख) में अपीलों का अधिकार बड़ा सीमित रखा गया है—क्योंकि हम जानते हैं कि विमुक्ति के आदेश को उच्च न्यायालय कभी-कभी ही उलटता है और बिरले ही मामले को उच्च न्यायालय अपने पास मंगाता है और उस पर निर्णय देता है। इसलिये बहुसंख्यक मामले, जिनमें कि अपील का अधिकार रहेगा, वह ऐसे ही होंगे जो उपखण्ड (ग) के अन्दर आतें हों। सुतरां इस

[श्री राजबहादुर]

अनुच्छेद का लागू होना उन नियमों पर निर्भर करता है जो प्रस्तुत उपखण्ड के परन्तुक के अधीन बनाये जायेंगे। इसलिये सारी बातें निर्भर करेंगी इन नियमों पर। पर इस सम्बन्ध में एक बात और भी है। मेरे माननीय एवं विद्वान् मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव ने आज अपने भाषण के सिलसिले में यह कहा कि न केवल मृत्यु दण्ड सम्बन्धी मामलों में ही अपील का अधिकार देना औचित्यपूर्ण है बल्कि अन्य मामलों में भी अपील का अधिकार मिलना चाहिये और इस प्रश्न को भी हमें हाथ में लेना चाहिये। माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव के पांडित्य एवं अनुभव के प्रति आदरभाव रखते हुये भी यह कहूंगा कि ऐसा करने में फिर वही पुरानी बात आ जाती है कि ''न्याय में विलम्ब करना न्याय न करने के बराबर है''। और यह भी स्पष्ट है कि अगर प्रत्येक आपराधिक मामले की अपील उच्चतम न्यायालय में ले जाने की अनुमति दी जाती है तो इसका लाजिमी नतीजा यह होगा कि मामलों के निपटाने में बड़ी देर लगेगी। इससे, न्याय-प्रशासन व्यवस्था के प्रति लोगों के विश्वास-भाव पैदा होने में कोई मदद नहीं मिल सकती है। उसी काल से जब से कि प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर ने 'हैमलेट' लिखा, यह कहावत सी चल गई है कि ''न्याय में देर होती ही है''। हमें अपने कानून में कुछ न कुछ ऐसी व्यवस्था करनी ही होगी जिससे कम से कम हम अपने देश में एक ऐसी प्रणाली निकाल सकें कि न्याय पाने में विलम्ब न हो। मैं यह भी कहूंगा कि हमें इस तथ्य को भी न भूलना चाहिये कि इधर कुछ दिनों से देश में अपराधों में काफी वृद्धि हो गई है। हर दिन प्रान्तों से देश में अपराधों की खबरें मिलती हैं और समाचार पत्रों में हम अपराधों के समाचार पाते हैं। देश के कुछ हिस्सों में तो अपराधों की एक लहर सी आ गई है। जो घटनायें आज हमारी पूर्वी एवं पश्चिमी सीमाओं पर हो रही हैं, हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। आज कलकत्ता में और उसके इर्द-गिर्द जो घटनायें हो रही हैं, हम उनकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। हमें इस तथ्य का भी ध्यान रखना होगा कि हमारे पड़ौसी देशों में रक्तपात और उपद्रव का बाजार गर्म है। आज ही प्रातः हमें समाचार पत्रों में यह देखने को मिला कि हमारे पूर्वी सीमा के देशों में तो लड़ाइयां चल ही रही हैं पर हमारी पश्चिमी सीमा के एक पड़ौसी देश में भी बम गिराये गये हैं। ऐसे संगीन मौके पर उचित यही है कि हम इस बात का ख्याल रखें कि हमारे देश में न्याय-प्रशासन में और मामलों का फैसला होने में ज्यादा देर न होने पाये। मैं यह निवेदन करूंगा कि जो स्वतंत्रता हमने प्राप्त की है उसके अभिभावक के रूप में हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारी यह स्वतन्त्रता कहीं अपराध-जन्य अवस्था और अराजकता के कारण हाथ से निकल न जाये। मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि आपराधिक मामलों के अपील विषयक अधिकार को हमें संसद पर छोड़ देना चाहिये। वह उस सम्बन्ध में जैसा ठीक समझे व्यवस्था करे।

***डा. बक्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): डा. अम्बेडकर द्वारा आज प्रातः उपस्थित किये गये संशोधन के फलस्वरूप यह अनुच्छेद 111-क अब जिस रूप में हमारे सामने आता है, उस पर मुझे चन्द ही शब्द कहने हैं, श्रीमान्। मैं सादर यह कहूंगा कि यह संशोधन सारतः बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मेरा संशोधन जिसे मैंने कल यहां, अपने अन्य संशोधन नं. 26 और 27 की उपेक्षा करके, जिनकी सूचना मैं पहले ही दे चुका था, पेश किया था। मेरे संशोधन में और डा. अम्बेडकर के इस संशोधन में अन्तर केवल

इतना ही है कि उनके संशोधन में उपखण्ड (ख) का प्रावधान और जोड़ किया गया है जिसके अधीन एक तरह के कुछ और मामलों की भी अपील की जा सकेगी। पर ये मामले बहुत ही कम होंगे और बिरले होंगे, पर मेरे संशोधन में ऐसे मामलों की अपील की व्यवस्था नहीं थी। अर्थात् ऐसे मामलों में, जहां उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले की सुनवाई के लिये अपने पास मंगवा लिया हो और अभियुक्त को मौत की सजा दे दी हो, प्रस्तुत संशोधन में अपील की व्यवस्था है, पर मेरे संशोधन में इसकी व्यवस्था नहीं थी। मैं समझता हूं कि इस तरह के मामले समूचे देश में साल में दो या तीन से ज्याादा न होंगे। फिर भी, मैं यह मंजूर करूंगा कि मेरे संशोधन में यह कमी रह गई थी और मैं पूर्णत: सहमत हूं कि उपखण्ड (ख) को इस अनुच्छेद में रखना ही चाहिये।

जिन सदस्यों ने आज बहस मुबाहिसे में हिस्सा लिया है, उन्होंने इस संशोधित अनुच्छेद पर भिन्न-भिन्न विचार सभा के समक्ष रखे हैं। एक तरफ तो कुछ सदस्यों ने यह कहा है कि संशोधन में जो अपील का अधिकार दिया गया है वह बड़ा ही सीमित है और उसकी परिधि और बड़ी कर देनी चाहिये ताकि उन सभी मामलों में अपील की जा सके जिनमें उच्च न्यायालय ने विमुक्ति-आदेश को उलट कर अभियुक्त व्यक्ति को चाहे आजीवन निर्वासन का या उससे भी कम कोई दण्ड दिया हो। इसी विचार पर माननीय मित्र पं. भार्गव ने उस दिन जोर दिया था और आज भी जोर दिया है। मैं सादर यह निवेदन करूंगा कि ऐसा करने से इस अनुच्छेद की परिधि एक अनुचित सीमा तक बढ़ जायेगी। इसे सभी स्वीकार करेंगे कि उच्चतम न्यायालय को एक ऐसे आपराधिक न्यायालय के रूप में बदलना जहां सभी तरह के आपराधिक मामलों की अपील आ सके, कभी भी वांछनीय नहीं हो सकता है। अगर ऐसा ही है कि सभी तरह के मामलों की अपील आवे तो फिर देश में आपराधिक कानूनों की संख्या इतनी ज्यादा है—हत्या एवं अन्य गम्भीर आपराधिक कानून ही उतने अधिक हैं—कि उच्चतम न्यायालय में आपराधिक अपीलों की भरमार हो जायेगी। यहां कहा गया है कि खर्च और उच्चतम न्यायालय में कर्मचारियों की वृद्धि का प्रश्न ऐसा नहीं है कि आपराधिक मामलों में जो अभियुक्त किये हों उनको सहाय्य प्रदान करने में वह बाधक हो क्योंकि मानव प्राणियों का जीवन और स्वातन्त्र्य सम्पत्ति से अधिक महत्त्व रखता है जिसके सम्बन्ध में व्यवहार-विषयक अपीलों के लिये अनुच्छेद 111 में प्रावधान रखा गया है। पर इस सम्बन्ध में यह दृष्टिकोण मुश्किल से ही ठीक कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन और स्वातन्त्र्य का सम्पत्ति से अधिक महत्त्व है पर आप अगर व्यवहार-विषयक या आपराधिक मामलों में अपील का अनियंत्रित अधिकार देते हैं तो उससे समाज को बहुत बड़ा नुकसान पहुंचेगा। साधारण हत्या सम्बन्धी मामले को ही लीजिये। प्रेसिडेन्सी शहरों में हत्या सम्बन्धी मामला उच्च न्यायालय में चलता है जहां सहायता के लिये पंच भी रहते हैं पर और अन्य बड़े शहरों में तथा प्रान्तों में जहां उच्च न्यायालय को आरम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त है, मुकदमे की सुनवाई सेशन न्यायाधीश करते हैं और उनकी सहायता के लिये जूरी या पंच रहते हैं। अधिकांश मामलों में निर्णय किया जाता है कि शुद्धत: तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों के आधार पर और गवाहों की बात सुन लेने के बाद सेशन न्यायाधीश अभियुक्त को दोष-सिद्ध घोषित कर देता है और उसे सज़ा सुनाता है जो मौत की सजा भी हो सकती है। उस निर्णय के विरुद्ध अधिकारत: उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है और अगर अभियुक्त व्यक्ति अपील न भी

[डा. बक्शी टेकचन्द]

करे तो भी सेंशन न्यायाधीश द्वारा किये गये मृत्यु-दण्डादेय का समर्थन जब उच्च न्यायालय कर देगा तभी सजा दी जायेगी। हर हालत में उच्च न्यायालय को सारी गवाहियों को और अन्य बातों को फिर से देख जाना पड़ता है और तब अगर उच्च न्यायालय उस नतीजे पर पहुंचता है कि अभियुक्त व्यक्ति को साक्ष्य के आधार पर ठीक ही सजा दी गई है तो दोनों ही न्यायालयों की राय एक होती है। ऐसे मामलों में, उच्चतम न्यायालय में फिर अपील करने की अनुमति देना वांछनीय न होगा। ऐसा दुनिया के किसी देश में नहीं होता है। आखिर बार-बार अपील करने की कोई हद भी तो होनी चाहिये। जिन मामलों में, उच्च न्यायालय सेशन न्यायालय के निर्णय से सहमत हो, भले ही वह मामला कत्ल का ही हो और उसमें मौत की सजा ही दी गई हो, उनके लिये उच्चतम न्यायालय में पुनः अपील का अधिकार देना बड़ा गलत होगा। ऐसे मामलों की संख्या हिन्दुस्तान में, मय उन रियासतों के जो उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्दर होंगी, साल में एक हजार से भी ज्यादा होगी। ऐसे हर मामले में अपील का अनियंत्रित अधिकार देना बड़ी ही खतरे की बात होगी। सभा को यह याद होगा कि व्यवहार-विषयक मामलों में प्रिवी कौंसिल ने यह नियम सा बना रखा था कि जिन मामलों में उच्च न्यायालय तथा अन्य अधीन न्यायालय के निर्णय एक होते थे उनमें वह दखल ही नहीं देता था। अगर यही बात आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में बरती जाये तो समय और पैसों की बर्बादी रुक जायेगी क्योंकि ऐसे मामलों में आगे अपील का अधिकार देना केवल समय और धन को बर्बाद करना है। इस बात की सम्भावना ही नहीं है कि उच्चतम न्यायालय शुद्धतः तथ्य सम्बन्धी प्रश्न पर ऐसे मामलों के सम्बन्ध में कभी असहमत होगा, जहां उच्च न्यायालय तथा सेशन न्यायालय दोनों ही साक्ष्य को ठीक तरह से देख लेने पर, किसी एक नतीजे पर पहुंचे हो। यदि खास-खास मामलों में ही अपील का अधिकार देना चाहिये और यही बात डा. अम्बेडकर के संशोधन में रखी गई है। प्रस्तुत उपखण्ड (क) के द्वारा एक महत्त्वपूर्ण अधिकार दिया गया है और कानून में जो अभी एक खामी है उसे दूर कर दिया गया है। यह उपखण्ड ऐसे मामलों के सम्बन्ध में है जहां बड़े शहरों में सेशन न्यायालय द्वारा या प्रेसिडेन्सी शहरों में उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति का आदेश दिया जताा है पर प्रान्तीय सरकार द्वारा विमुक्ति आदेश के विरुद्ध अपील करने पर अपील सुनने वाले न्यायासन ने अभियुक्त व्यक्ति को पुनः दोष-सिद्ध ठहरा दिया हो। ऐसे मामलों में अपील का अधिकार इस उपखण्ड द्वारा दिया गया है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि कानून यही कल्पना करता है कि हर व्यक्ति निरपराध है जब तक कि वह दोषी न प्रमाणित हो जाये; और फिर जब सेशन न्यायाधीश अभियुक्त व्यक्ति को निर्दोष बता देता है तो उस कल्पना की और भी पुष्टि हो जाती है। तो फिर इस आधारभूत कल्पना और उसकी पुष्टि के बाद भी अगर अपील सुनने वाला न्यायासन अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराता है और उसे मृत्यु दण्ड देता है तो अवश्य ही ऐसे मामलों में यह अपेक्षित हो जाता है कि उसकी और आगे छानबीन की जाये। प्रस्तुत संशोधन द्वारा ऐसे ही मामलों में उच्चतम न्यायालय में अपील का अधिकार दिया गया है। वस्तुतः यह प्रावधान अनुच्छेद 111 से सादृश्य रखता है जिसमें ऐसे व्यवहार-विषयक मामलों की अपील का प्रावधान किया गया है जिनमें विवाद-ग्रस्त विषय

की राशि या मूल्य बीस हजार या उससे अधिक है और अपीलीय न्यायासन ने अपने निर्णय में पहले के न्यायालय के निर्णय को उलट दिया है।

उपखण्ड (ख) द्वारा, जैसा कि मैं कह चुका हूं और भी सीमित मामलों के सम्बन्ध में अपील का अधिकार दिया गया है और उपखण्ड (क) के फलस्वरूप इस उपखण्ड का यहां लिपिबद्ध किया जाना आवश्यक है।

उपखण्ड (ग) के सम्बन्ध में यहां माननीय सदस्यों ने कई आशंकायें व्यक्त की है। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर का यह ख्याल है कि इस अनुच्छेद का, अनुच्छेद 112 से मेल नहीं खायेगा जिसमें उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों में अपील की विशेष अनुमति देने का अधिकार दिया गया है। मैं सादर यह कहूंगा कि मेरी समझ में नहीं आता कि इन दोनों में क्या परस्पर विरोध हो सकता है। उच्चतम न्यायालय को अपील के लिये विशेष अनुमति प्रदान करने की जो शक्ति दी गई है वह एक विचित्र तरह का अधिकार है। वर्तमान समय में इस अधिकार का प्रयोग, सम्राट, अपने शाही विशेषाधिकार के प्रयोग में, प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के मार्फत करते हैं। प्रस्तुत संविधान में, यही अधिकार, अनुच्छेद 112 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को दिया गया है। जैसा कि मैंने अभी उस दिन अनुच्छेद 112 के सम्बन्ध में कहा था, इसका दायरा बड़ा ही सीमित रहेगा। उच्चतम न्यायालय को विशेष अनुमति प्रदान करने का अधिकार रहेगा और उसका प्रयोग वह जिस तरह चाहे, हर तरह के मामले में चाहे वह व्यवहार-विषयक हो, या आपराधिक हो, या अन्य किसी कार्यवाही में जिसका निर्णय उसके अधीन अधीनस्थ किसी न्यायालय ने किया हो, कर सकता है। वर्तमान समय में प्रिवी कौंसिल अपील की अनुमति बिरले ही मामलों में प्रदान करती है, जहां उसका यह मत हो कि उसमें नैसर्गिक न्याय सम्बन्धी सिद्धान्तों की अवहेलना की गई है। ''नैसर्गिक न्याय'' क्या है, यह बड़ा अस्पष्ट है और कहीं भी इसकी परिभाषा नहीं दी गई है। इसके अन्दर वह मामले नहीं आते हैं जिनमें विधि-विषयक कोई गम्भीर और महत्त्वपूर्ण त्रुटि रह गई हो या जिनमें अन्याय हो गया हो। इसलिये, यह आवश्यक है कि ऐसे मामलों की अपील के लिये, जहां कि उच्चतम न्यायालय यह कहता हो कि मामला अपील के लायक है, प्रावधान किया जाये। उपखण्ड (ग) के द्वारा यही प्रावधान किया गया है और इसका जो परन्तुक है वह दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411-क की उपधारा (4) से अक्षरशः ज्यों का त्यों ले लिया गया है, जो 1942 के अधिनियम 25 के द्वारा उक्त संहिता में रखी गई थी। परन्तु इस उपधारा की परिधि बड़ी ही सीमित है और इसके अधीन ऐसे ही मामलों के सम्बन्ध में अपील की जा सकती है जिनमें प्रेसिडेन्सी-हाईकोर्ट ने अपने आरम्भिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी व्यक्ति को दोषी बताया हो। 1943 के पहले ऐसे मामलों में तब तक अपील नहीं की जा सकती थी जब तक कि महाधिवक्ता यह न कह दे कि मामला आगे अपील के लायक है, सुतरां मामला वहीं खत्म हो जाता था। बहुत से मामलों के बारे में यह अनुभव किया गया कि बावजूद इस बात के कि उसमें अन्याय हो गया है पर अपील एक में भी नहीं की गई है। 1943 में संशोधनकारी अधिनियम (Amending Act) के द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई थी कि अभियुक्त व्यक्ति विधि-विषयक प्रश्न के आधार पर या तथ्य संबंधी प्रश्न के आधार पर मामले की अपील कर सकता है अगर सेशन न्यायाधीश यह कहता हो कि मामला अपील के लायक है या अपीलीय

[डा. बक्शी टेकचन्द]

न्यायासन इस नतीजे पर पहुंचा हो कि मामला ऐसा है जिसमें तथ्य सम्बन्धी प्रश्नों पर और विचार करने की आवश्यकता है।

और फिर उपधारा (4) में यह भी प्रावधान रखा गया है कि अगर अपीलीय न्यायासन को इसका सन्तोष हो जाये कि मामला ऐसा है कि उसकी आगे प्रिवी कौंसिल में अपील होनी चाहिये तो वह एतदर्थ प्रमाण-पत्र दे सकता है और उसके आधार पर प्रिवी कौंसिल में उसकी अपील की जा सकती है। पर इस प्रावधान की परिधि भी बड़ी सीमित है और इसके अधीन केवल वही मामले आ सकेंगे जिनकी सुनवाई उच्च न्यायालय ने अपने आरम्भिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में की है। उदाहरण के लिये मद्रास प्रान्त को ही ले लीजिये। अगर अपराध मद्रास शहर की सीमा के अन्दर किया गया है तभी धारा 411-क लागू हो सकती है पर अगर अपराध मद्रास की सीमा से बाहर, या अन्य किसी शहर में, मसलन त्रिचनापली या तंजोर में किया गया है तो उसमें न अपीलीय न्यायासन में अपील की जा सकती है और न उसकी अपील प्रिवी कौंसिल में ही की जा सकती है, भले ही उसमें उच्च न्यायालय ने यह प्रमाण पत्र ही क्यों न दे दिया हो कि मामला अपील के लायक है। प्रस्तावित अनुच्छेद 111-क के उपखण्ड (ग) द्वारा जो व्यवस्था की जा रही है वह यह है कि बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के प्रेसिडेन्सी शहरों के बाहर के लोगों को भी अपील के सम्बन्ध में वही विशेषाधिकार पास हो जाये जो प्रेसिडेन्सी शहरों के निवासियों को प्राप्त है। मैं कहूंगा कि यह एक ऐसा प्रावधान है जिसके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है।

मेरे सुयोग्य मित्र श्री राजबहादुर का यह ख्याल है कि इस अनुच्छेद से अपीलों का तांता लग जायेगा और हर मामले में, चाहे उसमें अपराध का स्वरूप कुछ भी हो और उसमें कैसा भी दण्ड क्यों न दिया गया हो, उच्चतम न्यायालय में अपील करने का अधिकार मिल जायेगा। सादर, इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि बात ऐसी नहीं है। केवल सीमित मामलों में ही उच्च न्यायालय के यह कहने की सम्भावना है कि मामला अपील के लायक है। जिन न्यायाधीशों ने मामले की सुनवाई की होगी और उस पर निर्णय दिया होगा, वह खुद यह सम्भव नहीं है कि आसानी से यह कह देंगे कि मामला अपील के लायक है। ऐसा तो वह बिरले ही मामलों में करेंगे। जहां तक कि मैं जानता हूं, सन् 1943 के बाद से जबकि धारा 411-क पास की गई थी, तीन या चार से ज्यादा ऐसे मामले नहीं हुये होंगे जिनमें अपील प्रिवी कौंसिल में की गई हो। मैं समझता हूं कि समूचे देश से साल में आठ या दस से ज्यादा मामलों की अपील, इस उपखण्ड के अधीन उच्चतम न्यायालय में कभी न होगी। केवल चन्द मामले ही ऐसे होंगे जिनमें कोई ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होंगे कि उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय से यह कहेगा कि वह उस पर एक प्रामाणिक निर्णय दे दे। मैं यह कहूंगा कि ये प्रावधान बड़े ही हितकर हैं और इन्हें संविधान में स्थान देना ही चाहिये।

माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद ने न्यायालय के अवमान-विषयक मामलों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसके बारे में मुझे केवल एक ही बात कहनी है। आपने कहा है कि इन मामलों में भी अपील का अधिकार प्राप्त होना चाहिये। कोई कितना भी क्यों

न चाहता हो कि ऐसे मामलों में भी, जहां कोई व्यक्ति न्यायालय के अवमान के लिये दोषी ठहराया गया हो, पुनर्विचार होना चाहिये। पर मेरा ख्याल है कि ऐसे मामलों में अपील का अधिकार देना आवश्यकता से ज्यादा आगे बढ़ना होगा। अगर किसी ऐसे मामले में कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न निहित है तो अनुच्छेद 111-क के उपखण्ड (ग) के अधीन उसमें अपील की कोशिश की जा सकती है।

डा. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन नं. 198 के द्वारा अब प्रस्तुत अनुच्छेद 111-क, जिस रूप में हमारे सामने आता है, वह ऐसा है कि उससे उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है जो इस सम्बन्ध में अपेक्षित है। माननीय सदस्यों से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह उसे स्वीकार करें। जो लोग यह आशंका करते है कि उससे अपराध को प्रोत्साहन मिलेगा, उनसे मैं यह निवेदन करूंगा कि उनकी यह आशंका सर्वथा निराधार है। इसी तरह यह आशंका भी सर्वथा निराधार है कि इस अनुच्छेद की परिधि अनुचित रूप से सीमित है। यह प्रावधान एक सुसंतुलित एवं हितकर प्रावधान है जिसे हमें संविधान में स्थान देना ही चाहिये।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): इस प्रश्न पर अब मत लिया जाना चाहिये, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।'

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, चन्द बातें कहने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं ताकि सभा को इस बात का ठीक-ठीक पता चल जाये कि इस नवीन अनुच्छेद 111-क को किसलिये रखा जा रहा है। इस सम्बन्ध में पहली बात मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि अनुच्छेद 111-क को इस अभिप्राय से नहीं रखा जा रहा है कि उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों की सुनवाई का आम क्षेत्राधिकार दे दिया जाये जो क्षेत्राधिकार उसे इस अनुच्छेद द्वारा दिया जा रहा है वह बड़ा ही सीमित है।

उच्चतम न्यायालय को आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में वह अपीलीय क्षेत्राधिकार देना, जो कि अनुच्छेद 111-क के उपखण्डों में उल्लिखित है, मैं क्यों वांछनीय समझता हूं इसे समझाने के लिये उपखण्ड (क), (ख) को उपखण्ड (ग) से मैं पृथक कर देना चाहता हूं क्योंकि दोनों का प्रयोजन भिन्न है। जैसा कि सभा को मालूम है, उपखण्ड (क) और (ख) के अनुसार उच्चतम न्यायालय को अपीलीय क्षेत्राधिकार केवल उन्हीं मामलों में होगा जहां मृत्युदण्ड दिया गया हो और अन्य मामलों में नहीं। यह बात यहां ध्यान में रखनी होगी।

अब मैं संक्षेप में यह बताऊंगा कि उच्चतम न्यायालय को यह सीमित अपीलीय क्षेत्राधिकार देना क्यों आवश्यक है वह सिर्फ उन्हीं मामलों में जहां मृत्यु-दण्ड दिया गया है, अपील की सुनवाई कर सकता है। सभा को यह मालूम होना चाहिये कि जहां तक कि अपने अपराध विषयक कानून-विज्ञान का सम्बन्ध है, जैसा कि दण्ड-प्रक्रिया-संहिता में दिया हुआ है, इस बात को एक सिद्धान्त के रूप में मान लिया गया है कि अगर अभियुक्त

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश दिया जाता तो उस दण्डादेश के विरुद्ध अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम एक अपील का अधिकार उसे मिलना ही चाहिये।

***अध्यक्ष:** पर यहां मैं आपको एक बात बताऊंगा और वह यह कि आपके संशोधन के अन्दर ऐसा मामला नहीं आता है जहां दण्डादेश को बढ़ा कर मृत्यु-दण्डादेश दिया गया हो।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** बात यह है कि ऐसे मामलों को हम यहां नहीं रखना चाहते। उन मामलों में जहां दण्डादेश को बढ़ा कर मृत्यु-दण्डादेश दिया गया है उच्चतम न्यायालय को हम अपीलीय क्षेत्राधिकार नहीं देना चाहते हैं। हम ऐसा जानबूझकर कर रहे हैं और सभा को भी सम्भवत: यह मालूम होगा। यह एक मानी हुई बात है कि जिस ममाले में, अभियुक्त व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश दिया गया है, वहां अभियुक्त को कम से कम उस दण्डादेश के विरुद्ध एक अपील का अधिकार मिलना ही चाहिये। यह बात एक सिद्धान्त के रूप में मान ली गई है और इस सिद्धान्त को देखते हुये तथा दण्ड-प्रक्रिया-संहिता के प्रावधानों पर गौर करते हुये हम यह देखते हैं कि यहां तीन तरह के मामलों में इस सिद्धान्त की अवहेलना की गयी है या इसे अमल में नहीं लाया गया है। एक तो ऐसा मामला जिसमें जिला न्यायाधीश सेशन न्यायाधीश के रूप में प्रकार्य करते हुये अभियुक्त व्यक्ति को बरी कर देता है पर हुकूमत, जब उसके विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करती है, क्योंकि उसे ऐसी अपील का अधिकार प्राप्त है और फिर उच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये अभियुक्त व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश देता है। ऐसे मामले में अपील का अधिकार नहीं दिया गया है। उक्त सिद्धान्त के सम्बन्ध में यहां एक अपवाद तो यह रखा गया है।

दूसरे मामले वे हैं जिनमें कलकत्ता, बम्बई या मद्रास के उच्च न्यायालय के सेशन न्यायाधीश, सेशन-न्यायालय के रूप में बैठ कर अभियुक्त व्यक्ति को बरी कर देते हैं। पर हुकूमत जब विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करती है तो उच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के अधीन उस मामले की सुनवाई करके अभियुक्त व्यक्ति को मृत्यु-दण्डादेश दे देता है। ऐसे मामलों में भी अपील की व्यवस्था नहीं रखी गयी है। और फिर तीसरी श्रेणी में वह मामले आते हैं जिनको उच्च न्यायालय दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 526 के अधीन अपने पास मंगा कर सुनवाई करता है और अभियुक्त व्यक्ति को मौत की सजा दे देता है। ऐसे मामलों के सम्बन्ध में भी अपील की व्यवस्था यहां नहीं रखी गई है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** ऐसे मामलों में तो अपील का अधिकार है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** नहीं, ऐसे मामलों में अपील का अधिकार नहीं दिया गया है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411-क के अधीन ऐसे मामलों में अपील की जा सकती है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** धारा 411-क केवल कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में ही लागू होती है। और वहां भी सभी मामलों के सम्बन्ध

में या ऐसे मामले के सम्बन्ध में नहीं लागू होती है, जहां उच्च न्यायालयों ने धारा 506 के अधीन सुनवाई की हो। धारा 411-क का दायरा केवल उन्हीं मामलों तक सीमित है जिन पर उच्च न्यायालय ने आरम्भिक न्यायालय के रूप में बैठकर निर्णय दिया है। ऐसे निर्णयों के विरुद्ध अपील की जा सकती है। इसलिये, श्रीमान्।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** धारा 526 में साधारणत: मामलों के एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में भेजे जाने के बारे में व्यवस्था है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** ऐसा मामला जो अधीन न्यायालय से उच्च न्यायालय के पास जाता है और वहां उसकी सुनवाई होती है, उसमें अपील का अधिकार नहीं दिया गया है। प्रस्तुत अनुच्छेद के द्वारा एक असाधारण क्षेत्राधिकार की व्यवस्था की गई है। सो इन तीन तरह के मामलों में, उस सिद्धान्त की कि जिस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड मिला हो उसे कम से कम एक अपील का अधिकार होना ही चाहिये, सर्वथा उपेक्षा की गई है। मैं समझता हूं कि इस बात को देखते हुये कि वर्तमान युग तथा भारतीय जनता पर्याप्त रूप से विवेक सम्पन्न हो गई है, ऐसा प्रावधान होना ही चाहिये। उपखण्ड (क) और (ख) का उद्देश्य यही है कि ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त व्यक्ति को प्रथम बार के न्यायालय में तो विमुक्त कर दिया गया हो पर उच्च न्यायालय ने उसे मृत्यु-दण्डादेश दिया हो, अपील का अधिकार प्राप्त रहे। मैं नहीं समझता कि सद्विवेक या मानवता का ख्याल रखते हुये कोई भी व्यक्ति ऐसा होगा जो उपखण्ड (क) और (ख) में रखे गये प्रावधानों के विरुद्ध कोई आपत्ति उठायेगा।

अब मैं उपखण्ड (ग) को लेता हूं। सभा को यह स्मरण होगा कि दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411 के अधीन, जहां तक कि कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के उच्च न्यायालयों का सम्बन्ध है, आज भी यह प्रावधान प्रवर्त्तन में है। यह जो अधिकार है कि प्रिवी कौंसिल में मामले की अपील की जा सकती है अगर उच्च न्यायालय यह प्रमाणित करता हो कि मामला अपील के लायक है, 1943 में विधान मण्डल द्वारा प्रदत्त किया गया था—जानबूझ कर प्रदत्त किया गया था। इसलिये, दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 411 में जो प्रावधान है उसके सम्बन्ध में हमारे सामने दो ही प्रश्न हैं। या तो उस प्रावधान को बिल्कुल ही हटा दिया जाये या इसे अन्य उच्च न्यायालयों के लिये भी लागू कर दिया जाये। धारा 411 के प्रावधानों को, जिनके अनुसार उच्च न्यायालय के यह प्रमाणित करने पर कि मामला अपील के लायक है किसी मामले की अपील की जा सकती है, अगर हटा दिया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि आप एक चालू अधिकार को जिसको जनता तीन भिन्न प्रान्तों में प्रयोग में लेती आई है जानबूझकर हटा रहे हैं। एक ऐसे न्यायिक अधिकार को वापस लेना जो अरसे से जनता को प्राप्त रहा है, कुछ असंगत सा प्रतीत होता है। इसलिये दूसरा उपाय यही रह जाता है कि इसके प्रावधानों के दायरे को इस तरह बढ़ा दिया जाये कि अन्य सभी न्यायालयों पर वह लागू हो सकें। मेरे संशोधन में यही उपाय अपनाया गया है, अर्थात् इसे अन्य उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में भी लागू कर दिया गया है। माननीय मित्रगण जो इस आशंका से विचलित हो रहे हैं कि इससे उच्चतम न्यायालय में आपराधिक अपीलों की बाढ़ आ जायेगी, वह, मेरी समझ से, इस सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण बातों को भूल जाते हैं। एक तो इस बात को वह भूल रहे हैं

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

कि नवीन अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) और (ख) के द्वारा अपील का जो अधिकार दिया जा रहा है वह, किसी भी समय जबकि विधान मंडल मृत्यु-दण्ड को उठा देगा, स्वतः समाप्त हो जायेगा। मृत्यु-दण्ड के सम्बन्ध में आज दुनिया के सभी भागों में जो कुछ कहा जा रहा है, उसका ख्याल करते हुये तथा अपनी परम्परा का ख्याल करते हुये अगर विधान-मण्डल मृत्यु-दण्ड को उठा देता है तो फिर उच्चतम न्यायालय में अपील करने की कोई आवश्यकता ही न रह जायेगी और उस हालत में यह उपखण्ड (क) और (ख) स्वतः प्रवर्त्तन शून्य हो जायेंगे और उच्चतम न्यायालय का कार्यभार, जहां तक कि आपराधिक मामलों का सम्बन्ध है, अगर बिल्कुल ही नहीं तो बहुत कुछ कम हो जायेगा।

जहां तक कि उपखण्ड (ग) का सम्बन्ध है, आप यह देखेंगे कि इसके साथ एक परन्तुक रखकर इसके प्रावधान को सीमित कर दिया गया है। परन्तुक में कहा गया है ''परंतु इस खण्ड के उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील, ऐसे नियमों के अधीन रह कर जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये, तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जाये, ही होंगी''। इसलिये प्रमाण-पत्र सम्बन्धी जो व्यवस्था है वह ऐसी नहीं है कि प्रमाण-पत्र की मांग करते ही वह उपलब्ध हो जायेगा और उसके आधार पर अपील की खुली सुविधा मिल जायेगी। इस सम्बन्ध में, उच्च न्यायालय जो शर्त और प्रतिबन्ध रखेगा तथा उच्चतम न्यायालय जो नियम बनायेगा उनके अधीन रह कर ही, उपखण्ड (ग) के अधीन कोई अपील की जा सकेगी। इसलिये यह मालूम होना चाहिये कि उपखण्ड (ग) एक बड़ा कठोर प्रावधान है। यह लचीला नहीं है और न उतना व्यापक ही है जैसा कि लोग समझ रहे हैं।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** परन्तुक जोड़ देने पर यह प्रावधान लचीला नहीं रह जाता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, मैं भी यही कह रहा हूं। परन्तुक के साथ यह प्रावधान लचीला नहीं रह जाता है।

अब मैं अपने संशोधन के खण्ड (2) को लेता हूं। इसके द्वारा उच्चतम न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार को और विस्तृत करने की शक्ति संसद को दी गई है और संशोधन में दिये गये तीन तरह के मामलों के अलावा अन्य मामलों के सम्बन्ध में भी संसद उसको और आपराधिक क्षेत्राधिकार प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में एक विचारधारा यहां यह रही है कि जो तीन तरह के मामले संशोधन के खण्ड (1) में उल्लिखित किये गये हैं वह काफी हैं और अब इस बात के लिये रास्ता खुला न रखना चाहिये। संसद चाहे तो उच्चतम न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार को और विस्तृत कर दे। उपखण्ड (क) और (ख) द्वारा जो आपराधिक क्षेत्राधिकार यहां दिया गया है वह इस अधिकार के सम्बन्ध में अन्तिम सीमा होनी चाहिये। इसका एकमात्र उत्तर जो मैं दे सकता हूं वह यह है। यह समझना और सोचना बड़ा कठिन है कि आगे चल कर क्या स्थिति हो सकती है। पर अगर कोई व्यक्ति यह कहता है कि आगे चल कर ऐसी कोई स्थिति ही नहीं उत्पन्न होगी जिसमें यह अपेक्षित हो कि संसद उच्चतम न्यायालय के आपराधिक क्षेत्राधिकार को और विस्तृत करे तो मेरी समझ से तो हमें इस बात पर विश्वास और

भरोसा कर लेना चाहिये। पर यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही हो जाये तो खण्ड (2) के प्रावधान के अभाव में यहां क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि उस हालत में हमें, उस प्रक्रिया के अनुसार जिसे एतदर्थ हम किसी आगामी भाग में रखना चाहते हैं, इस संविधान में संशोधन करना पड़ेगा। इसलिये सवाल यह उठता है कि क्या करना ठीक होगा? क्या यह ठीक होगा कि इस प्रावधान को ऐसा कठोर बनाया जाये कि संविधान में बिना संशोधन किये संसद को भी यह अधिकार न रहे कि इस सम्बन्ध में वह कोई परिवर्तन कर सके या यह ठीक होगा कि संसद को इस सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति देकर—समय, स्थिति और कैसा कानून बने इस सब बातों को संसद पर छोड़ दीजिये—इस प्रावधान को लचीला बनाया जाये?

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं यह बताऊं कि अनुच्छेद 114 के अधीन, उच्चतम न्यायालय को क्षेत्राधिकार देने की शक्ति संसद को है।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** अनुच्छेद 114, मेरा ख्याल है, उस विषय से सम्बन्ध नहीं रखता है। मेरे पास उसकी प्रति नहीं है वरना मैं उत्तर में सब कुछ बता देता। यह अनुच्छेद तो संघ-सूची के सम्बन्ध में है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** संघ-सूची में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में जो क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय को प्राप्त है, उसी की चर्चा इस अनुच्छेद में है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, यह अनुच्छेद उक्त क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में ही है। पर मान लीजिये सहगामी सूची या सूची 3 के सम्बन्ध में यदि उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार को विस्तृत करना हो तो इसके लिये अनुच्छेद 114 का उपयोग तो नहीं किया जा सकता है।

अब, श्रीमान्, मैं उन बातों को लेता हूं जो माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी ने इसके सम्बन्ध में कही है। उनकी आलोचनायें अधिकतर उपखण्ड (ग) के सम्बन्ध में है। पहली आपत्ति उनकी यह है कि उपखण्ड (ग) की उपयोगिता ही क्या रह जाती है जबकि उसके प्रावधानों पर परन्तुक रख कर इतना ज्यादा प्रतिबंध लगा दिया गया है। उनका मतलब यह है कि जब उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन ही अपील की जा सकती है तो फिर इस उपखण्ड (3) को रखने में लाभ ही क्या है?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र:** जिस उपखण्ड का जिक्र है यह उपखण्ड (ग) है न कि उपखण्ड (3)।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** भूल के लिये मुझे खेद है। उपखण्ड (ग) का ही जिक्र है। आपका कहना यह है कि उपखण्ड (ग) को रखने में कोई लाभ नहीं है अगर परन्तुक में दिये गये प्रतिबन्धों से उसे आप जकड़ देते हैं। इस सम्बन्ध में पहली बात उन्हें यह याद दिलाऊंगा कि इस उपखण्ड का जो परन्तुक है वह अक्षरश: उन परन्तुकों से मिलता है जो दण्ड-प्रक्रिया-संहिता का धारा 417 के साथ तथा जो व्यवहार-प्रक्रिया-संहिता की धारा 109 के साथ रखे गये हैं। माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी को स्मरण होगा कि उच्चतम न्यायालय के व्यवहार-विषयक अपीलीय क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध

[माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर]

में हमने एक खण्ड ऐसा रखा है जो अनुच्छेद 111 (क) के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) से अक्षरशः मिलता हुआ है। अब मेरा कहना यह है कि अगर अनुच्छेद 111 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) को रखने में कोई लाभ है, जब कि वहां भी उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये गये नियमादि के प्रतिबन्ध रखे गये हैं तो मेरी समझ से सहजबुद्धि यही कहती है कि प्रस्तुत उपखण्ड (ग) को रखने में भी अवश्य ही लाभ है, भले ही परन्तुक के प्रावधानों द्वारा उसे भी सीमित ही क्यों न कर दिया गया हो। माननीय मित्र ने यह भी कहा है कि अनुच्छेद 112 में एक प्रावधान ऐसा है जो उच्चतम न्यायालय को यह अधिकार देता है कि विशेष अनुमति प्रदान करके वह किसी भी मामले की अपील को ग्रहण कर सकता है और यह अनुच्छेद व्यवहार-विषयक अपीलों तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह एक व्यापक अनुच्छेद है और जिसमें किसी वाद या विषय की अपील को विशेष अनुमति द्वारा ग्रहण करने की बात कही गई है। उनका कहना यह था कि अब अनुच्छेद 112 है ही तो इस उपखण्ड (ग) को रखने से क्या लाभ? उसके सम्बन्ध में भी मेरा वही जवाब है जो पहले दे चुका हूं। जब अनुच्छेद 112 में यह बता ही दिया गया है कि उच्चतम न्यायालय को उच्च न्यायालय पर व्यवहार विषयक मामलों में क्या क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा तो फिर अनुच्छेद 111 के उपखण्ड (ग) को ही रहने की क्या जरूरत है? अगर अनुच्छेद 112 में रहते हुये भी व्यवहार विषयक अपीलों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 111 के उपखण्ड (ग) को हम रखते हैं तो फिर अनुच्छेद 111 (क) के उपखण्ड (ग) को रखने में आपको क्या आपत्ति है? यहां जो बात ध्यान में रखने की है वह यह है कि अनुच्छेद 112 के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय को यह स्वतंत्रता दे दी गई है कि अपीलों को ग्रहण करने के बारे में जो भी शर्तें वह रखना चाहे रख सकता है। इस सम्बन्ध में उसके क्षेत्राधिकार पर कोई प्रतिबंध नहीं रखा गया है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः** व्यवहार-विषयक अपीलों के सम्बन्ध में तो वहां एक शर्त रख दी गई है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, यह सच है। मैं नहीं जानता कि उच्चतम न्यायालय द्वारा इस अनुच्छेद का निर्वचन किस रूप में किया जायेगा। यह बात उच्चतम न्यायालय पर छोड़ दी गई है कि वही इसका निर्वचन करे। हो सकता है, उच्चतम न्यायालय उसका निर्वचन उसी रूप में करे जिस रूप में कि प्रिवी कौंसिल ने किया है या वह जैसा भी चाहे उसका निर्वचन कर सकता है। हो सकता है कि उच्चतम न्यायालय इसका ऐसा निर्वचन करे जो सीमित हो या यह भी हो सकता है कि उसका निर्वचन अधिक व्यापक हो। अगर सीमित रूप में इसका निर्वचन किया जाता है तो इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि यह उपखण्ड (ग) कुछ काम का सिद्ध होगा। इसलिये मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि मेरा संशोधन ऐसा है कि इससे हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और उन लोगों की अन्तरात्मा को भी सन्तोष पहुंच जाता है जिनको यह आपत्ति है कि बिना एक अपील का मौका दिये किसी भी अभियुक्त व्यक्ति को कभी फांसी न मिलनी चाहिये। मैं समझता हूं कि यह संशोधन इस रूप में शब्दबद्ध किया गया है कि आपराधिक अपीलों के कारण, प्रशासन की दृष्टि से या किसी तरह, उच्चतम न्यायालय पर कभी अधिक कार्य-भार न पड़ेगा। आशा है मित्रगण अपने संशोधनों को अब वापस ले लेंगे और मेरे संशोधन को स्वीकार करेंगे।

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम** (मद्रास : जनरल): एक स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान्। भाषा सम्बन्धी अन्तर का प्रभाव.....

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अब कोई प्रश्न करने का मौका नहीं रह गया है। इसके लिये काफी देर हो चुकी है।

***अध्यक्ष:** माननीय डा. अम्बेडकर ने अपने जवाब में यह नहीं बतलाया कि इन दो तरह के मामलों में, एक तो उनमें जिनमें कि उच्च न्यायालय ने पहले के न्यायालय द्वारा दिये हुये दण्डादेश को बढ़ा कर मृत्यु का दण्डादेश दे दिया हैा और उनमें जिनमें विमुक्ति-आदेश को उलट कर उसने मृत्यु-दण्डादेश दिया है, आपने यहां क्या अन्तर रखा है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** दण्डादेश की वृद्धि के विरुद्ध अपील में तथा विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध अपील में दो बातों का अन्तर है। जब उच्च न्यायालय किसी अभियुक्त-व्यक्ति को अधीन न्यायालय द्वारा दिये गये दण्डादेश में वृद्धि करता है तो वहां वह अभियुक्त को प्रथम बार सिद्ध-दोष नहीं ठहराता है बल्कि वह व्यक्ति तो पहले से सिद्ध-दोष ठहराया हुआ रहता हैं। पर विमुक्ति-आदेश के विरुद्ध की गई अपील की सुनवाई में उच्च न्यायालय पहले वाले न्यायालय के निर्णय को उलट देता है और अभियुक्त व्यक्ति को सिद्ध-दोष ठहरा देता है। दूसरा अन्तर इन दोनों में यह है कि दण्डादेश की वृद्धि में कार्यवाही उस रूप में चलाई जाती है मानों कोई नियमित अपील का मामला हो और ऐसे मामले में अभियुक्त व्यक्ति को दण्ड-प्रक्रिया-संहिता के अधीन अपील का सांवैधानिक अधिकार प्राप्त रहता है। वह यह बता सकता है कि न केवल दण्डादेश की वृद्धि ही अनुचित है बल्कि मामले के तथ्यों को देखते हुये उसे दोषी ठहराना भी औचित्य शून्य है। दण्डादेश की वृद्धि के मामलों में एक अपील का अधिकार पहले ही से प्राप्त है। ऐसी हालत में उसमें और आगे अपील की व्यवस्था अनावश्यक है। तीसरी बात यह है कि संशोधन में दोषसिद्धि या विमुक्ति को अपील का आधार माना गया है। दण्डादेश किस तरह का है या सजा कैसी दी गई है, इसे संशोधन में अपील-विषयक अधिकार का आधार नहीं माना गया है।

***अध्यक्ष:** मान लीजिये किसी मामले में सेशन अदालत की राय यह हो कि मामला संगीन चोट का है। पर चोट के फलस्वरूप मृत्यु होने पर भी उस मामले में अदालत कारावास का दण्ड देती है। अब फर्ज कीजिये अदालत के इस फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील होती है और उसकी राय यह होती है कि मामला हत्या का है संगीन चोट का नहीं और वह मृत्यु-दण्डादेश देता है। अब यहां उच्च न्यायालय ने हत्या के लिये पहली बार अभियुक्त को दोषी ठहराया और मृत्यु-दण्डादेय भी यहां पहली बार ही दिया गया है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** संशोधन में जो योजना रखी गई है, फिलहाल मैं उससे आगे जाने के लिये तैयार नहीं हूं। आगे चल कर अगर संसद यह समझे कि ऐसे मामले में अपील का अधिकार होना चाहिये तो खण्ड (2) के अधीन उसे ऐसी व्यवस्था करने की पूरी स्वतंत्रता रहेगी।

***अध्यक्ष:** यह तो दूसरी बात है और इसके बारे में फैसला देना सभा का काम है। पर जहां तक कि मेरा सम्बन्ध है मैं नहीं समझ सका कि दोनों में क्या अन्तर है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): डा. अम्बेडकर के मूल संशोधन नं. 24 पर मैंने एक संशोधन पेश किया है जो है संशोधन नं. 25। एक नया संशोधन आज आया है उसका नम्बर है 108। इसके शब्द ये हैं–''संसद विधि द्वारा...उच्चतम न्यायालय को. .. और भी शक्ति दे सकेगी।'' (Parliament may by law confer on the Supreme Court any further power to entertain, etc.) उच्चतम न्यायालय के अपील-विषयक क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में मेरा भी संशोधन सिद्धान्ततः ऐसा ही था। पर जिस रूप में यह संशोधन शब्दबद्ध किया है उससे सम्भव है इसका भिन्न ही अर्थ लगाया जाये और मेरी समझ से यह अनुच्छेद 112 से टक्कर खाता है क्योंकि 112 में उच्चतम न्यायालय को ऐसा क्षेत्राधिकार दिया गया है।

***अध्यक्षः** अब इसके लिये समय नहीं रह गया है। मैं समझता हूं कि इस बात को उठाने में बड़ी देर कर दी है। अब इस मौके पर हम इस प्रश्न को उठाने की अनुमति नहीं दे सकते हैं।

अब मैं विभिन्न संशोधनों पर राय लूंगा। जो सदस्य यह समझते हों कि डा. अम्बेडकर के इस नये संशोधन में उनके संशोधन की बातें आ जाती हैं, वे आशा है, कृपया अपने संशोधनों को वापस ले लेंगे।

प्रस्ताव यह है–

''कि सूची 1 (पांचवें सप्ताह) के संशोधन नं. 23 और 24 के सम्बन्ध में, नवीन अनुच्छेद 111-क के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये–

'111-क दण्ड विषयों में उच्चतम न्यायालय का अपीलीय क्षेत्राधिकार—(1) भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा दिये हुये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश या दण्डादेश की उच्चतम न्यायालय में अपील होगी यदि–

(क) उच्च न्यायालय ने अपील किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को उलट दिया है तथा उसको मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा

(ख) उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण हेतु अपने पास मंगा लिया है तथा ऐसे परीक्षण में अभियुक्त व्यक्ति को दोष-सिद्ध ठहराया है और मृत्यु-दण्डादेश दिया है; अथवा

(ग) उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक है:

परन्तु उस खण्ड के उपखण्ड (ग) के अधीन होने वाली अपील, ऐसे नियमों के अधीन रहकर, जिन्हें कि उच्चतम न्यायालय समय-समय पर बनाये तथा ऐसी शर्तों के अधीन रह कर जो उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित या अपेक्षित की जायें, ही होंगी।

(2) संसद विधि द्वारा ऐसी शर्तों और परिस्थितियों के अधीन, जो ऐसी विधि में उल्लिखित की जायें उच्चतम न्यायालय को भारत राज्य-क्षेत्र के किसी

उच्च न्यायालय के दण्ड कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, अन्तिम आदेश अथवा दण्डादेश की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकेगी।' ''

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं दूसरे संशोधनों को लूंगा। मैं यह देख लूंगा कि दूसरे संशोधनों में से कौन-कौन से संशोधन इस संशोधन के अन्दर आते हैं। संशोधन कई पेश किये गये हैं, इसलिये मैं एक-एक को लूंगा और यह देखूंगा कि कौन संशोधन इस स्वीकृत संशोधन के अन्दर आ जाता है और उसकी जो-जो बातें इस संशोधन के अन्दर नहीं आती हैं उन्ही पर मैं सभा की राय लूंगा।

पं. ठाकुरदास भार्गव: मैं अपने सभी संशोधनों को वापस लेना चाहता हूं श्रीमान।

सभा की अनुमति के सभी संशोधन वापस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** इस पद्धति से हमारा काम सरल हो जायेगा। संशोधन भी बहुत से आये हैं।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मेरा समूचा संशोधन ही (नं. 22) डा. अम्बेडकर के नये संशोधन के अन्दर नहीं आता है। उनके संशोधन के अन्दर वह मामले नहीं आते हैं जिनकी ओर अभी-अभी आपने उनका ध्यान आकृष्ट किया था। मेरा मतलब है ऐसे मामलों से जहां पुनरीक्षण में मृत्यु-दण्डादेश दिया गया है। फिर भी मैं अपने संशोधन को वापस लेता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** संशोधन नं. 25 को मैं वापस लेना चाहता हूं जो कि मेरे नाम में है।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** संशोधन नं. 33 को वापस लेने की मैं अनुमति चाहता हूं।

सभा की अनुमति से यह संशोधन भी वापस ले लिया गया।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मेरा एक संशोधन है जो डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्दर नहीं आता है। यह है संशोधन नं. 41। इसमें तीन बातें ऐसी हैं जो डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्दर नहीं आती हैं।

***अध्यक्ष:** तो आप उसे वापस नहीं लेना चाहते हैं?

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** जी हां, मैं उसे वापस लेना नहीं चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** तो मैं संशोधन नं. 41 पर, जो डा. अम्बेडकर के संशोधन के अन्दर नहीं आता है, मत लिये लेता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1932 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 111 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद जोड़ा जाये:

'111-A. Any person against whom any judgment, sentence or order has been passed by a High Court in the territory of India except the

[अध्यक्ष]

States for the time being specified in Part III of the First Schedule, in any criminal proceeding or a proceeding relating to contempt of court, or from any judgement, sentence or order of any other tribunal exercising criminal jurisdiction which judgment, sentence or order is not liable to be set aside or modified in appeal or revision by any such High Court, shall have a right of appeal in the following cases, namely—

(a) against any sentence of death;

(b) against any other judgement, sentence or order of such High Court or tribunal, as the case may be, that the judgement, sentence or order involves a substantial question of law; or

(c) in any other case where the High Court or the tribunal, as the case may be certified that it is a fit case for appeal.' "

[111क-किसी भी व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध, प्रथम अनुच्छेद के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के अतिरिक्त भारत के और किसी भी राज्य क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय द्वारा, किसी दण्ड-कार्यवाही या न्यायालय-अवमान सम्बन्धी कार्यवाही में दिये गये किसी निर्णय, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध या दाण्डिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले अन्य किसी न्यायाधिकरण द्वारा दिये गये किसी निर्णय, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध, जिनको कि अपील पर या पुनरीक्षण में किसी ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा रद्द या रूपान्तरित न किया जा सकता हो, निम्नलिखित मामलों में अपील का अधिकार होगा, अर्थात्–

(क) किसी मृत्यु-दण्डादेश के विरुद्ध;

(ख) किसी ऐसे उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा जैसी भी स्थिति हो, दिये गये किसी निर्णय, दण्डादेश या आदेश के विरुद्ध जिनमें कोई सारवान विधि-प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हो; अथवा

(ग) या किसी मामले में, जिसमें उच्च न्यायालय या न्यायाधिकरण ने, जैसी भी स्थिति हो, यह प्रमाणित किया हो कि मामला अपील के लायक है।]

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 111-क, संशोधित रूप में, संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 111-क को, संशोधित रूप में, संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 103-क

***अध्यक्ष:** यह एक नया अनुच्छेद है जिसे डा. पी.के. सेन अपने संशोधन नं. 1870 के द्वारा संविधान में जोड़ना चाहते हैं। उनका संशोधन, संशोधन सम्बन्धी पुस्तक के भाग 1 में पृष्ठ 190 पर दिया हुआ है। यह माननीय सदस्य यद्यपि इस समय यहां उपस्थित नहीं हैं पर इस संशोधन को वह पहले पेश कर चुके हैं। इसलिये उस पर इस समय या तो मत लेना होगा या विचार करना होगा। कोई सदस्य इसके सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं। (*कोई नहीं उठा।*)

मैं उस पर अब राय लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 103 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'103-A. A person who is holding or has held the office of Judge of the Supreme Court shall not be eligible for appointment to any office of emolument under the Government of India or a State, other than that of the Chief Justice of India or the Chief Justice of a High Court:

Provided that the President may, with the consent of the Chief Justice of India, depute a judge of the Supreme Court temporarily on other duties:

Provided further that this article shall not apply in relation to any appointment made and continuing while a Proclamation of Emergency is in force, if such appointment is certified by the President to be necessary in the national interest:' ''

[103-क वह व्यक्ति, जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारण कर रहा है या कर चुका है, भारत-शासन के या उसके किसी राज्य के अधीन, भारत के मुख्य न्यायाधिपति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद के अतिरिक्त अन्य किसी परिलाभ पद पर नियुक्त किये जाने का पात्र न होगा:

परन्तु राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधिपति की सहमति से, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को अस्थायी रूप से अन्य कर्त्तव्यों पर लगा सकता है:

परन्तु यह और भी कि यह अनुच्छेद किसी ऐसी नियुक्ति के सम्बन्ध में, जो सद्यस्कृत्यता की उद्घोषणा के प्रभावी रहने के काल में की जाये या जारी रखी जाये, न लागू होगी यदि राष्ट्रपति ऐसी नियुक्ति को राष्ट्रीय हित में आवश्यक प्रमाणित करता हो।]

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 164

***श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में मुझे एक सुझाव देना है। इस अनुच्छेद में, राज्य के विधान सभा या विधान मण्डल में बरती जाने वाली मतदान पद्धति तथा वहां रिक्तियों के होते हुये भी सदनों के कार्य करने की शक्ति का जिक्र है। इस अनुच्छेद 164 में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की भी प्रसंगात एक चर्चा आ गई है। मेरा सुझाव यह है, श्रीमान्, कि हमें अनुच्छेद 172 पर उसके पहले विचार करना चाहिये जिसमें 'संयुक्त बैठक' सम्बन्धी प्रश्न की अधिक विस्तार से चर्चा की गई है और जिसमें कतितय ऐसे सिद्धान्त अन्तर्ग्रस्त हैं जिनमें हम सब की दिलचस्पी है। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि इस अनुच्छेद पर विचार करने से पहले हमें अनुच्छेद 172 पर विचार कर लेना चाहिये क्योंकि संयुक्त बैठक सम्बन्धी प्रश्न की चर्चा करने वाले इस अनुच्छेद को पास कर लेने के बाद तो हम उस सिद्धांत को मानने के लिये वचनबद्ध हो जायेंगे और इस समस्या से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर हम यहां विचार ही न कर सकेंगे।

***अध्यक्ष:** इसलिये आपका सुझाव यह है कि इस अनुच्छेद पर अभी न विचार किया जाये?

***श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी:** हां, श्रीमान्, मेरा यही सुझाव है।

***एक माननीय सदस्य:** अनुच्छेद 172 के बाद हमें इसको लेना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी के सुझाव को मैं समझ रहा हूं पर यहां 'संयुक्त बैठक' शब्द केवल प्रसंगात आ गये हैं। अगर हम समुचित अनुच्छेदों को बदल कर दूसरे रूप में रखना तय करते हैं तो मसौदा समिति यहां से भी इन शब्दों को हटा देगी। अगर उन अनुच्छेदों में इन शब्दों का कोई हवाला न रहेगा तो यहां से ये शब्द अपने आप हट जायेंगे। जहां तक कि इस अनुच्छेद विशेष का सम्बन्ध है, यहां इन शब्दों के हवाले के पीछे कोई खास बात नहीं हैं। यह बात आप पर छोड़ दी जाती है। अगर मसौदा समिति को यह अनुमति दे दें कि वह इस अनुच्छेद में आगे इसका वक्त आने पर परिवर्तन कर दे तो अभी इस पर विचार किया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद का वस्तुत: इस प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है कि हम 'संयुक्त बैठक' करें या न करें। यदि संविधान के दूसरे भागों में संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं किया जा सकता है तो यह अनुच्छेद जहां तक कि संयुक्त बैठ का सम्बन्ध है प्रवर्त्तन शून्य हो जायेगा और फिर इस पदसंहिता को हम आगे चलकर हटा भी सकते हैं। इस अनुच्छेद को रोके रखने का कोई कारण नहीं है। इस पर विचार करके हम इसे अभी निपटा सकते हैं।

डा. अम्बेडकर, आप अपने संशोधन नं. 2389 को पेश कर सकते हैं, जो कि महज रस्मी ही है।

***श्री मोहनलाल गौतम** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): तो मैं माने लेता हूं कि आपका आदेश यह है कि इस अनुच्छेद के पास हो जाने पर भी इसका जहां तक कि अनुच्छेद 172 का सम्बन्ध है उस पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ेगा।

***अध्यक्ष:** हां, यही तो मैं भी कह रहा हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं, श्रीमान्:

''कि अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'save as provided' (संविधान में प्रावहित) शब्दों की जगह 'save as otherwise provided' (संविधान में अन्यथा प्रावहित)' शब्द रखे जायें।''

(2390 से 2396 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***श्री जसपतराय कपूर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2389 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'in a House' (किसी आगार में) शब्दों की जगह 'in any sitting of a House' (किसी आगार की किसी बैठक में) शब्द रख जायें।''

इस पर एक मेरा दूसरा संशोधन यह है:

''कि उपर्युक्त संशोधन नं. 61 के सम्बन्ध में अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'in a House or a' शब्दों की जगह 'at any sitting of a House or' शब्द रखे जायें।''

स्पष्ट है कि इस संशोधन का अभिप्राय यही है कि इस अनुच्छेद की भाषा में आवश्यक परिवर्तन हो जाये। आशा है डा. अम्बेडकर इसकी प्रशंसा ही करेंगे और इसे तुरन्त स्वीकार कर लेंगे।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'save as provided' शब्दों की जगह 'save as otherwise provided' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं. 62 पर मत लेता हूं जिसके अन्दर और अन्य सभी संशोधन भी आ जाते हैं।

प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 164 के खण्ड (1) में 'in a House or' शब्दों की जगह 'at any sitting of a House or' शब्द रखे जायें।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''अनुच्छेद 164 को इसके संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 164 अपने संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 167-क

***अध्यक्ष:** अब हम नवीन अनुच्छेद 167-क को लेते हैं। संशोधन नं. 2441 पर आये हुये संशोधन 65 पर अब विचार शुरू किया जायेगा। इसमें यह कहा गया है कि अनुच्छेद 167 के बाद प्रस्तुत नवीन अनुच्छेद 167-क रखा जाये।

***श्री बी.ए. मांडलोई** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन नं. 2441 को पेश करता हूं जो संशोधन-पुस्तिका के भाग 1 में पृष्ठ 247 पर छपा है। संशोधन यों है:

''कि अनुच्छेद 168 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद 168-क जोड़ दिया जाये:

'168-A. On a question being raised or having arisen whether a member has incurred the penalty for the breach or breaches mentioned in article 168, the Chairman of the Legislative Council or the Speaker of the Legislative Assembly, as the case may be shall refer the matter to the Committee of Privileges or to a sub-committee appointed by him for its report. The Chairman or the Speaker shall give his decision after the report has been discussed in the House or Council and the decision of the Chairman or Speaker, shall be final.' "

[168-क. इस प्रश्न के उठने या उठाये जाने पर कि आया कोई सदस्य अनुच्छेद 168 में उल्लिखित अवहेलना या अवहेलनाओं के लिये शक्ति का भागी बना है या नहीं, विधान-परिषद का सभापति या विधान सभा का अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति हो, उस मामले को, विशेषाधिकार-समिति या अपने द्वारा नियुक्त उपसमिति के पास प्रतिवेदन के लिये भेजेगा। समिति रूप में उपविष्ट सभा में प्रतिवेदन पर विचार हो जाने के बाद, उस प्रश्न पर सभापति या अध्यक्ष का निर्णय अन्तिम होगा।]

सदस्यता सम्बन्धी अनर्हता के सम्बन्ध में, तथा अनुच्छेद 165 में प्रावहित घोषणा के पूर्व या अनर्ह होने या अनर्ह कर दिये जाने पर भी सभा में बैठने या मतदान करने की शास्ति के सम्बन्ध में यहां हम अनुच्छेद 167 तथा 168 को पास कर चुके हैं। इन अनुच्छेदों को पास कर देने पर, इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक ही है कि कौन व्यक्ति इस प्रश्न का निर्णय करेगा कि आया सदस्य सभा में बैठने और मतदान के लिये अनर्ह है या नहीं। इसलिये इस बात की जरूरत आती है कि संविधान में एक नवीन अनुच्छेद रखा जाये, जिसके अधीन किसी खास व्यक्ति या अधिकारी को इन प्रश्नों के उठने पर निर्णय देने की शक्ति प्राप्त हो।

अब अगर हम इस उपाय को स्वीकार करते हैं तो हमें दो बातों का ख्याल रखना होगा। एक तो यह है कि उस व्यक्ति या अधिकारी का निर्णय जिसे कि इसकी शक्ति दी गई हो, अन्तिम होगा। अर्थात जिस व्यक्ति या अधिकारी को इस प्रश्न पर निर्णय देने की शक्ति दी गई है उसका निर्णय अन्तिम होगा और उसके निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि ऐसा होने से जरूरी है कि मामला अरसे तक चलता रहेगा और जिस अभिप्राय से इन अनुच्छेदों को रखा जा रहा है उसकी ही हत्या हो जायेगी। इसलिये जिसे भी इस प्रश्न पर निर्णय देने की शक्ति दी जाये, उसका निर्णय अन्तिम होना चाहिये। दूसरी बात जो ध्यान में रखने की है वह यह है कि ऐसा प्रश्न उठने पर उसका फैसला यथासम्भव शीघ्र हो जाना चाहिये क्योंकि अनुच्छेद में यह प्रावधान रखा गया है कि अनर्ह होने पर अगर कोई सदस्य सभा में बैठता है या उसकी कार्यवाही में भाग लेता है या किसी विशेष प्रस्ताव पर मतदान करता है तो उसे प्रतिदिन पांच सौ रुपये के हिसाब से शास्ति के रूप में देना होगा। ज्यों ही ऐसा कोई सवाल उठेगा कि अमुक सदस्य अनर्ह हो गया है, वह सदस्य स्वभावतः यही चाहेगा कि इस प्रश्न पर यथासम्भव शीघ्र निर्णय दे दिया जाये। अगर वह सभा की कार्यवाही में भाग लेता है और निर्णय उसके विरुद्ध होता है तो उसे शास्ति की रकम देनी होगी और अगर वह बुद्धिमान आदमी की तरह सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लेता है निर्णय उसके पक्ष में होता है तो सभा की कार्यवाही में भाग लेने का जो बहुमूल्य अधिकार उसे प्राप्त है उससे वंचित रह जाता है। इसलिये इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी होंगी। एक तो यह कि निर्णय अन्तिम होना चाहिये और दूसरा यह कि यथा-सम्भव शीघ्र उस पर निर्णय होना चाहिये। मेरा कहना यह है विधानसभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद् का सभापति, उस प्रश्न पर निर्णय देने के लिये सर्वथा सक्षम व्यक्ति हैं और इनको ऐसे प्रश्नों पर निर्णय देने की शक्ति हमें यहां देनी चाहिये। हम यह जानते ही हैं, श्रीमान्, कि सभापति या अध्यक्ष को सभा में उठाये गये आवश्यक प्रश्नों पर तुरन्त और महत्त्वपूर्ण निर्णय देना होता है। सुतरां इस प्रश्न पर निर्णय देने के लिये कि कोई सदस्य सदस्यता के लिये अनर्ह हो गया है या नहीं, ये व्यक्ति सर्वथा सक्षम है। मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव दिया है कि अगर ऐसा कोई प्रश्न उठता है तो उसे विशेषाधिकार समिति या एक उपसमिति के पास तुरन्त भेज देना चाहिये और ज्योंही उस समिति का प्रतिवेदन उस प्रश्न पर प्राप्त हो जाये, उस पर सभा में शीघ्र ही विचार होना चाहिये जिस पर सभापति या अध्यक्ष इस स्थिति में आ जायेंगे कि वह उस पर शीघ्र ही अपना निर्णय दे देंगे। मैं कहूंगा कि यह संशोधन सभा को स्वीकार करना चाहिये।

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन नं. 65 को भी पेश कर सकते हैं।

***श्री बी.ए. मांडलोईः** मैंने अपने मूल संशोधन नं. 2441 को पेश कर दिया है। संशोधन नं. 65 को मैं नहीं पेश कर रहा हूं। यह नं. 2441 के सम्बन्ध में है। इस संशोधन नं. 65 को मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी पेश करेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अगर वह इसे नहीं पेश कर रहे हैं तो मैं पेश कर दूंगा। मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्:

> '167-A. *Decisions on questions as to disqualification of members*—(1) If any question arises as to whether a member of House of the Legislature of a State has become subject to any of the disqualifications mentioned in clause (1) of the last preceding article the question shall be referred for the decision of the Governor and his decision shall be final.
>
> (2) Before giving any decision on any such question, the Governor shall obtain the opinion of the Election Commission and shall act according to such opinion.' "
>
> [167-क (1) *सदस्यों की अनर्हताओं के प्रश्नों पर विनिश्चयन*—यदि कोई प्रश्न उठता है कि राज्य के विधान मण्डल का सदस्य गत पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खण्ड (1) में वर्णित अनर्हताओं का भागी होता है या नहीं, तो वह प्रश्न राज्यपाल को विनिश्चय के लिये सौंपा जायेगा और उसका विनिश्चयन अन्तिम होगा।
>
> (2) ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चयन देने से पूर्व राज्यपाल निर्वाचन आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।]

मैं सभा से अनुरोध करूंगा श्रीमान्, कि वह माननीय श्री मांडलोई द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन के इस संशोधित रूप को स्वीकार करे क्योंकि उनके संशोधन नं. 2441 को अगर स्वीकार किया जाता है तो उसे अमली प्रयोग देने में कई कठिनाइयां पैदा होंगी। अनुच्छेद 167 में वर्णित अनर्हताओं को प्रयोग में लाने की शक्ति अगर हम अध्यक्ष को देते हैं तो उसमें एक कठिनाई यह आती है कि ऐसी भी अवधि आयेगी जिसमें अध्यक्ष का निर्वाचन ही न हुआ रहेगा और दूसरी कठिनाई यह है कि, जो व्यक्ति अध्यक्ष निर्वाचित हो, सम्भव है वही किसी अनर्हता का भागी हो गया हो और प्रस्तुत योजना के अनुसार भी राज्य का स्थायी प्रमुख ही ऐसा व्यक्ति होगा जो इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई कर सकता है। यहां यह आपत्ति की जा सकती है कि जब एक बार अध्यक्ष का निर्वाचन हो जाता है तो फिर उसके अधिकारों पर अतिक्रमण नहीं होना चाहिये। मैं समझता हूं कि एक पहले मौके पर भी संसद सम्बन्धी अनुच्छेद को लेकर यहां यही प्रश्न उठा था पर उसका निराकरण यह प्रावधान रख कर किया गया था कि सभा में किये गये सभी कामों के सम्बन्ध में, जो शक्तियां राष्ट्रपति को प्राप्त रहेंगी वे सब एक समुचित अधिकारी को सौंप दी जायेगी जो अधिकारी सम्भवत: अध्यक्ष होगा। यहां इस बात की संभावना नहीं है कि राज्यपाल बिल्कुल अपनी ही मरजी से काम करेगा। वह अपने मंत्रियों की राय से चलेगा और यह स्वाभाविक है कि मंत्री वर्ग बिना अध्यक्ष से परामर्श किये कुछ भी न करेगा। प्रस्तुत संशोधन के दूसरे खण्ड में एक निर्वाचन-आयोग की स्थापना की पहले से ही कल्पना कर ली गई है और इसका उल्लेख यहां पहली बार हुआ है। इसका सम्बन्ध निर्वाचन सम्बन्धी अध्याय के अनुच्छेद 289 और उसके आगे के अनुच्छेदों से है और मसौदा-समिति ने समुचित संशोधनों के द्वारा एक निर्वाचन-आयोग की स्थापना का प्रस्ताव रखा है जिसका निर्णय निर्वाचन सम्बन्धी प्रश्नों में अन्तिम होगा। इसलिये, इस बात को बचाने के लिये कि राज्यपाल अपनी ही मरजी से इस सम्बन्ध

से न काम करे या मन्त्रियों की राय पर अनुचित अभिप्रायों से प्रेरित होकर न काम करे, यहां दूसरे खण्ड के द्वारा राज्यपाल और उसके सलाहकारों पर यह दायित्व डाल दिया गया है कि वे निर्वाचन-आयुक्त की, या जो भी व्यक्ति उसकी ओर से इस प्रश्न का निर्णय करता हो उसकी राय अवश्य ले लेंगे। मेरा विश्वास है कि माननीय मित्र मांडलोई अपने संशोधनं. 2441 के द्वारा जिस त्रुटि को दूर करना चाहते थे वह इसके द्वारा दूर हो जाती है। यहां अध्यक्ष की प्रतिष्ठा का कोई प्रश्न अन्तर्निहित नहीं है क्योंकि हम अध्यक्ष के किसी अधिकार को नहीं छीन रहे हैं बल्कि हम सिर्फ यही प्रावधान कर रहे हैं कि अध्यक्ष के अस्तित्व में न आने तक क्या व्यवस्था काम में लाई जायेगी। आशा है सभा श्री मांडलोई के संशोधन नं. 2441 को इस संशोधित रूप में स्वीकार करेगी।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): मैं संशोधन नं. 68 को पेश करना चाहता हूं श्रीमान्, जो मेरे नाम में है। मेरा प्रस्ताव यह है:

''कि उपर्युक्त संशोधन नं. 65 में, नवीन प्रस्तावित अनुच्छेद 167-क में:

(1) खण्ड (1) में, 'Governor and his' शब्दों के स्थान पर 'Election Commission and its' शब्द, तथा

(2) खण्ड (2) को और खण्ड (1) के प्रारम्भ में रखे हुये अंक '(1)' को हटा दिया जाये।''

श्री मांडलोई की बात मैंने सुनी है श्रीमान्। उनका कहना यह है कि अध्यक्ष ही इस सम्बन्ध में समुचित अधिकारी होगा और उसके द्वारा नियुक्त समिति के प्रतिवेदन पर अध्यक्ष जो निर्णय दे वह अन्तिम माना जायेगा। उनके संशोधन के सम्बन्ध में मुझे दो आपत्तियां हैं। पहली आपत्ति यह है कि सदस्य की अनर्हता का प्रश्न बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न होता है और इसकी छानबीन विस्तारपूर्वक होनी चाहिये। अवश्य ही इस सम्बन्ध में जो समिति नियुक्त की जायेगी उसके सदस्य किसी राजनैतिक पार्टी के ही सदस्य होंगे और सदस्यों की अनर्हता का प्रश्न किसी राजनैतिक पार्टी के सदस्यों पर न छोड़ा जाना चाहिये। इसलिये अच्छा यह होगा कि इस मसले को निर्वाचन-आयोग को सौंपा जाये। पर जो संशोधन श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया है उसके खण्ड (2) में यह कहा गया है कि राज्यपाल इस प्रश्न पर कोई निर्णय देने से पहले निर्वाचन-आयोग की राय जरूर ले लेगा और उस राय के अनुसार काम करेगा। इस उपखण्ड (2) के अनुसार राज्यपाल पोस्ट आफिस के रूप में केवल एक मध्यवर्ती व्यक्ति रह जायेगा क्योंकि जब आप यह कहते हैं कि राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा और इसके साथ ही यह भी कहते हैं कि राज्यपाल निर्वाचन-आयोग की राय के अनुसार ही इस सम्बन्ध में निर्णय देने के लिये बाध्य है तो फिर आप निर्वाचन आयोग की राय को ही क्यों न मंजूर करें और सीधे यही क्यों न कहें कि निर्वाचन-आयोग का निर्णय अन्तिम होगा? इन्हीं कारणों से मैंने अपना यह संशोधन रखा है और सभा से सिफारिश करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री मांडलोई का संशोधन, श्री कृष्णमाचारी के संशोधन से बिल्कुल भिन्न है और इसमें एक ही बात का खास तौर पर उल्लेख किया गया है। श्री मांडलोई का संशोधन केवल अनुच्छेद 108 के सम्बन्ध में है और उनका कहना यह है कि अनुच्छेद 108 में वर्णित अवहेलना का

[श्री आर.के. सिधवा]

जो प्रश्न है उसका निर्णय सभापति या अध्यक्ष, जैसी भी स्थिति करे। श्री कृष्णमाचारी का संशोधन एक व्यापक संशोधन है जिसमें अनर्हता सम्बन्धी सभी बातों का एक आम उल्लेख है। निर्वाचन विषयक दुराचरण या भ्रष्टाचार का प्रश्न, निश्चय ही निर्वाचन-आयोग के पास जाना चाहिये। अनुच्छेद 108 में कहा गया है कि:

> ''यदि कोई व्यक्ति..... अनुच्छेद 165 की अपेक्षाओं की पूर्ति करने से पूर्व..... बैठता या मतदान करता है तो..... इत्यादि।''

अनुच्छेद 165 सदस्य की शपथ के सम्बन्ध में है और यदि शपथ लेने से वह इनकार करता है तो उस मामले को निर्वाचन-आयोग के पास भेजना ठीक न होगा। अतीत में अध्यक्ष ने ऐसे सदस्य को सभा में बैठने या बोलने की अनुमति देने से इनकार किया है। श्री मांडलोई यह चाहते हैं कि अध्यक्ष का यह अधिकार बना रहना चाहिये। पर श्री कृष्णमाचारी का संशोधन एक ऐसा संशोधन है जिसमें अनर्हता सम्बन्धी सभी बातों का एक आम उल्लेख है।

***अध्यक्ष:** यह केवल अनुच्छेद 165 के सम्बन्ध में नहीं है बल्कि आगे चल कर इसमें अन्य बातों का भी उल्लेख है।

***श्री आर.के. सिधवा:** मेरी बात शपथ लेने से इनकार करने के सम्बन्ध में ही है। पर इस सम्बन्ध में और भी बातें हो सकती हैं जैसे किसी सदस्य का विकृत मस्तिष्क हो जाना। अगर कोई सदस्य विकृत मस्तिष्क का हो जाता है तो उसे सभा की कार्यवाही में भाग लेने दिया जाये या नहीं इसका निर्णय अध्यक्ष ही करेगा।

***अध्यक्ष:** उस सूरत में क्या होगा अगर निर्वाचित हो जाने पर वह कोई परिलाभ का पद स्वीकार कर लेता है या दिवालिया हो जाता है?

***श्री आर.के. सिधवा:** ऐसे मामलों की तो जांच होनी चाहिये। पर अगर कोई सदस्य शपथ लेने से इनकार करता है तो क्या आप उसे सभा में बैठने देंगे? मेरा कहना है कि संशोधन में बड़ी अस्पष्टता है और इसे स्पष्ट बना देना चाहिये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्री सिधवा की इस बात से मैं सहमत हूं श्रीमान्, कि माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी के संशोधन में कुछ अस्पष्टता है। श्री मांडलोई ने अनुच्छेद 168 की एक खामी की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया है। उनका कहना है कि कोई व्यक्ति शास्ति का भागी हुआ है या नहीं इसका निर्णय अध्यक्ष को करना चाहिये। इसमें दो प्रश्न निहित हैं। एक तो यह कि कोई व्यक्ति सभा में बैठने के लिये अनर्ह हो गया है या नहीं। दूसरा यह कि वह आस्ति का भागी हो गया है या नहीं। किन-किन बातों के कारण कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अनर्ह होगा इसका उल्लेख अनुच्छेद 167 में है। कोई व्यक्ति अनर्ह हुआ है या नहीं, इसका निर्णय अनुच्छेद 167 के आधार पर किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि ऐसे प्रश्न का फैसला केवल निर्वाचन-आयोग ही कर सकता है। पर शपथ आदि बातों के सम्बन्ध में सीधे अध्यक्ष ही फैसला दे सकता है। इसलिये हमें दो नये खण्ड रखने चाहिये। एक 167-क और दूसरा 168-क। 167-क में यह उल्लिखित होना चाहिये कि कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अनर्ह हो गया है या

नहीं इसका फैसला निर्वाचन-आयोग ही करेगा। और अनुच्छेद 168-क में यह रहना चाहिये कि कोई सदस्य शास्ति का भागी हुआ है या नहीं उसका फैसला अध्यक्ष करेगा। राज्यपाल को यहां लाने से स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा और उसे इस मसले में कोई अधिकार भी न होना चाहिये। निर्वाचन-आयोग यह बतायेगा कि कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अनर्ह हुआ है या नहीं, और अध्यक्ष यह फैसला करेगा कि सदस्य शास्ति का भागी हुआ है या नहीं। प्रस्तावित अनुच्छेद में कुछ असंगति जरूर है इसलिये इसे हमें दो भागों में बांट देना चाहिये जैसा कि मैंने सुझाया है। एक भाग 167-क जिसमें यह होना चाहिये कि सदस्यता से कोई व्यक्ति अनर्ह हुआ है या नहीं इसका निर्णय निर्वाचन-आयोग करेगा और दूसरा 168-क जिसमें यह होना चाहिये कोई सदस्य शास्ति का भागी हुआ है या नहीं इसका फैसला अध्यक्ष करेगा।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं समझता हूं कि इस प्रश्न को राज्यपाल को सौंपने के विरुद्ध जो आपत्ति की जा रही है वह गलती से की जा रही है क्योंकि इस समूचे खण्ड में अनुच्छेद 167(1) में वर्णित अनर्हताओं की ही चर्चा है। शपथ न लेना कोई अनर्हता नहीं है। जब तक कि सदस्य शपथ नहीं लेता है वह सदस्य के रूप में सभा में भाग नहीं ले सकता और कुछ दिनों के बाद अपने आप उसका स्थान रिक्त हो जायेगा। शपथ न लेना कोई अनर्हता नहीं है और माननीय मित्र श्री सिधवा को मैं विश्वास दिलाता हूं कि इस मसले से निर्वाचन-आयोग या राज्यपाल का कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु बहुत सी अनर्हतायें ऐसी हैं जिनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक हमें जांच करनी होगी। कोई व्यक्ति किसी विदेशी शक्ति से निष्ठा तो नहीं रखता इत्यादि इत्यादि बातों को हमें सावधानी से देखना होगा। ऐसे मामले में हमें अभिलेख और साक्ष्य आदि को देखना होगा और अवश्य ही इस प्रयोजन के लिये हम अध्यक्ष को न्यायिक प्राधिकारी नहीं बना सकते हैं। फिर दूसरा एक बुनियादी सवाल इस सिद्धान्त को लेकर उठता है कि अध्यक्ष का किसी सदस्य से संघर्ष में आना ठीक नहीं है। कोई नहीं जानता है कि अनुसंधान का फल क्या होगा, पर अनुसंधान करने का काम अध्यक्ष करता है तो उस काम के सिलसिले में सदस्य और अध्यक्ष के पारस्परिक सम्बन्ध में अवश्य तनातनी आ जायेगी इसलिये अध्यक्ष में ऐसा प्रकार्य निहित करना कभी ठीक न होगा। कुछ संसदों में यह होता है कि खुद संसद ही ऐसे मामलों की जांच के लिये और उन पर फैसला देने के लिये एक समिति नियुक्त कर देती है या अन्य कोई व्यवस्था कर देती है। अवश्य ही हम भी ऐसी ही कोई प्रणाली अपना सकते हैं पर जब हमने निर्वाचन-आयोग की स्थापना कर ली है जो ऐसे मामलों का निपटारा करने के लिये एक सर्वथा सक्षम निकाय होगा, तो ऐसी व्यवस्था का अपनाना आवश्यक नहीं रह जाता है। जहां तक कि राज्यपाल का सम्बन्ध है, उसे तो यह काम इसलिये सौंपा जा रहा है कि वह कार्यपालिका का प्रमुख है और इस कार्य के लिये उसे एक सुविधा-सम्पन्न साधन बनाया जा सकता है। उसे इस सम्बन्ध में अपनी मरजी से निर्णय देने की शक्ति न रहेगी बल्कि निर्वाचन-आयोग की राय के अनुसार चलने के लिये वह बाध्य होगा। एक संशोधन में यह कहा गया है कि इस प्रश्न को सीधे निर्वाचन-आयोग को क्यों न सौंपा दिया जाये? ऐसा इसलिये नहीं किया जा सकता कि नियमत: ऐसे मसले का निपटारा राज्य के कार्यपालिका प्रमुख के द्वारा ही होना चाहिये। सही प्रक्रिया के ख्याल से ही यह व्यवस्था यहां की जा रही है अन्यथा तथ्य तो यह

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

है कि निर्वाचन-आयोग में ही ऐसे मामलों के अनुसंधान का पूरा क्षेत्राधिकार निहित रहेगा और वस्तुतः वही यह निर्णय देगा कि कोई व्यक्ति सदस्यता के लिये अर्ह है या अनर्ह।

दूसरी आपत्ति यह उठाई गई है कि जबकि सदस्य की अर्हता का प्रश्न, अनुच्छेद 168 के अधीन, एक लम्बी अवधि तक निलम्बित रह जाता है तो उस सूरत में सभा की कार्यवाही में शामिल होने वाले सदस्य को एक लम्बी रकम शास्ति के रूप में देनी पड़ जायेगी। यह सच है पर जिस सदस्य पर अनर्हता का आरोप किया गया हो उसके लिये यह अनिवार्य तो है नहीं कि वह सभा में बैठे ही। अगर वह सभा में बैठता है इसकी जिम्मेदारी उस पर है। यदि उसे इसका पक्का विश्वास है कि वह अनर्ह नहीं है तो अवश्य ही वह सभा में बैठने का जोखिम उठा सकता है और उसकी कार्यवाही में शामिल हो सकता है। पर अनर्हता सम्बन्धी आरोप के दौरान में अगर सभा में बैठता है और आगे चलकर यह प्रमाणित होता है कि वह वस्तुतः अनर्ह है तो यह कहना होगा कि उसने जानबूझ कर जोखिम उठाई है और उसे शास्ति की रकम देनी ही होगी। मैं नहीं समझता कि इस हालत में, वह सहानुभूति का पात्र माना जा सकता है। मेरी समझ से माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी ने जो संशोधन पेश किया है उसका हमें समर्थन करना चाहिये।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): एक ऐसा व्यक्ति श्रीमान्, जो सरकारी नौकर है, या जो विकृत मस्तिष्क है या अनुन्मुक्त दिवालिया है, या विदेशी है अथवा जो विधि द्वारा अनर्ह ठहरा दिया गया हो, वह प्रान्तीय विधान-मण्डल का सदस्य नहीं बन सकता है। अब सवाल यह उठता है कि इस बात की घोषणा कौन करेगा कि सदस्य अनर्ह है। इस सम्बन्ध में यहां दो संशोधन आये हैं। एक में यह कहा गया है कि अध्यक्ष उस मामले को विशेषाधिकार समिति के पास भेज देगा। यदि विधान सभा के सदस्य का प्रश्न है तो उसका अध्यक्ष और विधान-परिषद् के सदस्य का प्रश्न है तो उसका सभापति उसे भेजेगा और समिति में उस प्रश्न पर विचार किया जायेगा और समिति का प्रतिवेदन पाने पर अध्यक्ष या सभापति उस पर निर्णय देगा। एक दूसरे संशोधन में यह कहा गया है कि निर्वाचन-आयोग से परामर्श लेकर उसका निर्णय राज्यपाल करेगा।

पहले संशोधन में एक त्रुटि है जो यह है। मान लीजिये कोई विशेषाधिकार समिति ही न हो तो क्या होगा? जहां तक कि संविधान के मसौदे का सम्बन्ध है उसमें विशेषाधिकार समिति के लिये कोई प्रावधान नहीं है। ऐसी सूरत में क्या किया जायेगा? दूसरा सवाल यह उठता है कि अगर सभा की बैठक न हो रही हो तो क्या किया जायेगा? सभा की बैठक बुलाई जाये और तब उसमें उस पर विचार किया जाये। उसमें काफी देर लग जायेगी। ऐसे मामले में तो फौरन फैसला होना चाहिये। इसलिये इस काम के लिये राज्यपाल ही सर्वोत्तम-व्यक्ति हो सकता है। राज्यपाल पर यह काम सौंपा जाये। उसके विरुद्ध एकमात्र आपत्ति यह है कि राज्यपाल को पथप्रदर्शन करायेंगे मन्त्रिमण्डल और प्रधानमंत्री। परन्तु इस मसले में प्रधानमंत्री का कोई सरोकार न होगा और राज्यपाल उससे परामर्श न करेगा। राज्यपाल परामर्श लेगा निर्वाचन-आयोग से जो इस सम्बन्ध में एकमात्र प्रामाणिक अधिकारी होगा। निर्वाचन

आयोग का जो भी निर्णय होगा वह अन्तिम होगा और उसी पर राज्यपाल को चलना होगा। इसलिये, मेरा ख्याल है कि इन दो संशोधनों में दूसरा संशोधन अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है और इसी को हमें स्वीकार करना चाहिये।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** संशोधन नं. 65 और 2441 के पढ़ने पर मेरे मन में रंच मात्र भी सन्देह नहीं रह जाता है कि दोनों में दो भिन्न बातों की कल्पना की गई है। संशोधन नं. 65 में यह साफ तौर पर कहा गया है कि अनुच्छेद 167 के भाग (1) में दी हुई अनर्हताओं को लेकर अगर कोई प्रश्न उठता है तो वह निर्वाचन-आयोग के क्षेत्राधिकार के अन्दर होगा और इस आयोग की राय के अनुसार ही राज्यपाल उस सम्बन्ध में निर्णय देगा। अनुच्छेद 168 के सम्बन्ध में यह संशोधन रखा गया है कि अध्यक्ष को उस मसले पर फैसला देने का अधिकार होना चाहिये। मैं विनम्रतापूर्वक यह कहूंगा कि जहां तक अनुच्छेद 168 का सम्बन्ध है, उसमें उन अपराधों का वर्णन है जिनके सम्बन्ध में देश के कानून के अनुसार दण्ड की व्यवस्था होगी अब अपराध क्या होगा। उसकी हम समीक्षा कर लें। अगर कोई सदस्य यह जानता है कि वह अपराध कर रहा है फिर भी वह सभा में बैठने पर आग्रह करता है तो वह अपराधी है। जिस सदस्य ने शपथ नहीं ली है उसे सभा में बैठने का अधिकार नहीं है। वह जानता है कि उसने शपथ नहीं ली है फिर भी वह सभा में बैठ रहा है। इसी तरह जब उसे यह मालूम हो कि सदस्यता के लिये अर्ह नहीं रह गया है फिर भी अगर वह.....

***अध्यक्षः** यदि सदस्य ने शपथ नहीं ली है तो भी क्या वह सभा में बैठ सकता है?

***श्री आर.के. सिधवाः** सभा में वह बैठ सकता है पर उसकी कार्यवाही में भाग नहीं ले सकता है। वह मतदान नहीं कर सकता है। ऐसा वह शपथ लेने के बाद ही कर सकता है।

***अध्यक्षः** पर शपथ लेने के पहले ही क्या वह सदस्य माना जा सकता है?

***श्री आर.के. सिधवाः** हां, पूर्ववक्ताओं ने इसे मंजूर किया है।

***अध्यक्षः** मैं देखता हूं कि अनुच्छेद 165, इस सम्बन्ध में, बिल्कुल स्पष्ट है। उसमें कहा गया है किः

> ''राज्य की विधान सभा या विधान-परिषद् का प्रत्येक सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व, राज्यपाल के अथवा..... के समक्ष तृतीय अनुसूची में उस प्रयोजन के लिये दिये हुये प्रपत्र के अनुसार शपथ लेगा'' इत्यादि, इत्यादि।

इसलिये बैठने के पहले उसके लिये शपथ लेना जरूरी है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** इसलिये जो व्यक्ति शपथ नहीं लिया है वह अच्छी तरह जानता है कि वह अपराध कर रहा है। सुतरां उस व्यक्ति पर देश का आम कानून लागू होता है और उसी के अनुसार उसके अपराध का दण्ड मिलना चाहिये। इसमें अध्यक्ष के हस्तक्षेप का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। यह तो एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति को मालूम है कि उसका ऐसा करना अपराध है फिर भी वह वैसा करता है। उसे तो देश के आम कानून के अनुसार दण्ड मिलना चाहिये; उस पर अर्थदण्ड लगना चाहिये

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

और राज्य उस रकम को बतौर ऋण के वसूल करेगा। इसलिये मैं समझता हूं कि श्री मांडलोई के संशोधन को, सभा को न स्वीकार करना चाहिये। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** बहस मुबाहिसे के सिलसिले में यहां बहुत से प्रश्न उठाये गये हैं और मैं चाहूंगा कि उनका एक-एक करके उत्तर दूं। माननीय मित्र श्री सिधवा की बात को अगर मैंने ठीक-ठीक सुना है तो उन्होंने अनुच्छेद 165 का जिक्र किया है जिसमें शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने की बात कही गई है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में तो यही बात है कि अगर इसके प्रावधानों की पूर्ति नहीं की जाती है तो इससे सदस्य का स्थान रिक्त नहीं हो जाता है। इस अनुच्छेद में सिर्फ यही कहा गया है कि कोई व्यक्ति सभा की कार्यवाही में न भाग ले सकेगा और न मतदान कर सकेगा जब तक कि वह शपथ न ले ले। बस, इतना ही इसमें कहा गया है। इसलिये, इसको लेकर मेरी समझ से यहां कोई कठिनाई नहीं पैदा होती है।

***श्री आर.के. सिधवाः** तो ऐसा मामला, आखिर निर्वाचन-आयोग के पास ही क्यों भेजा जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं उस बात की ओर आ ही रहा हूं। जहां तक अनुच्छेद 165 का सम्बन्ध है, मेरा ख्याल है कि इसमें और 167 में क्या बुनियादी फर्क है इसे वह समझते होंगे। अनुच्देद 165 के सम्बन्ध में तो यही है कि शपथ न लेने पर सदस्य का स्थान नहीं रिक्त हो जाता है। उस पर केवल यह निर्योग्यता लागू हो जाती है कि वह सभा की कार्यवाही में भाग न ले सकेगा।

अब मैं मुख्य संशोधन को लेता हूं जिसे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने पेश किया है। उनका संशोधन है नवीन अनुच्छेद 167-क को रखने के बारे में। सिवाय एक बात के, जिसका कि मैं अभी-अभी उल्लेख करूंगा, अन्य सभी बातों के ख्याल से यह संशोधन बिल्कुल सही है। राज्यपाल पर फैसला देने का काम सौंपने का कारण यह है कि आम कायदे के अनुसार ऐसी अनर्हता के सम्बन्ध में निर्णय देने का भार, जिसको लेकर सदस्य का स्थान रिक्त होता हो, उसी खास अधिकारी को सौंपा जाता है जिसे उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये निर्वाचन कराने की शक्ति प्राप्त रहती है। यद्यपि यह बात लिखित रूप में नहीं कही गई है पर इसे सभी अच्छी तरह समझते हैं कि अनुच्छेद 167 में वर्णित किसी अनर्हता के कारण सदस्य का स्थान रिक्त हो गया है या नहीं उसका निर्णय वही अधिकारी करेगा, जिसे उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये निर्वाचकों से यह कहने की शक्ति प्राप्त रहेगी कि वह उस स्थान के लिये अपना प्रतिनिधि चुने। इसके बारे में कोई सन्देह नहीं है कि अपने नवीन संविधान में राज्यपाल को ही यह शक्ति दी गई है कि निर्वाचकों से अपना प्रतिनिधि चुनने को वह कहे। ऐसी दशा में अनर्हता सम्बन्धी कारण के आधार पर स्थान रिक्त घोषित करने की शक्ति, लाजिमी है, कि राज्यपाल को ही प्राप्त रहनी चाहिये। इसलिये जहां तक कि अनुच्छेद 167-क के खण्ड (1) का सम्बन्ध है, उसे स्वीकार करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती है।

अब मैं खण्ड (2) को लेता हूं। यह खण्ड कुछ अधिक व्यापक हो गया है। इसमें यह कहा क्या है कि अनर्हता सम्बन्धी प्रश्न का निर्णय राज्यपाल करेगा पर शर्त यह है

कि इसमें यह निर्वाचन-आयोग की राय जरूर ले लेगा और उसकी राय के अनुसार ही निर्णय करेगा। यदि अनुच्छेद 167 पर सदस्यगण दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि जहां तक कि (क) से (घ) तक के उपखण्डों में वर्णित अनर्हता का सम्बन्ध है वस्तुतः आयोग ऐसी स्थिति में नहीं है कि उनके सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई राय दे सके क्योंकि सभी बातें उसमें ऐसी हैं जो निर्वाचन आयोग के दायरे से बाहर की है। उदाहरण के लिये, कोई व्यक्ति परिलाभ का कोई पद धारण करता है या कोई सदस्य विकृत मस्तिष्क है अथवा वह अनुन्मुक्त दिवालिया है या वह किसी विदेशी शक्ति के प्रति निष्ठा रखता है, यह-सब ऐसे मसले हैं जो निर्वाचन-आयोग की परिधि से सर्वथा बाहर की चीजें हैं। इसलिये उन प्रश्नों के सम्बन्ध में राज्यपाल को राय देने के लिये निर्वाचन-आयोग को समुचित निकाय कभी नहीं कहा जा सकता है। पर जहां तक कि उपखण्ड (ङ) का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं उसके बारे में निर्वाचन-आयोग राय दे सकता है क्योंकि उपखण्ड (ङ) के अधीन तो अनर्हता का प्रश्न किसी भ्रष्टाचार के या वृत्ति के अनुरूप काम करने के कारण उठ सकता है जिसमें निर्वाचन सम्बन्धी कानून के अनुसार सदस्य अनर्ह करार दिया जा सकता है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या निर्वाचन-आयोग आवश्यक अनुसंधान नहीं कर सकता है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** यहां अनुसंधान का प्रश्न ही कहां उठता है? इस बात का निश्चय करने के लिये कि कोई व्यक्ति अनुन्मुक्त दिवालिया है या नहीं अनुसंधान की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये मेरा कहना यह है कि अनुच्छेद 167-क का खण्ड (2) है तो ठीक पर यह उन्हीं स्थितियों तक सीमित रहना चाहिये जिनका उल्लेख उपखण्ड (ङ) में किया गया है। इसलिये आपकी अनुमति से श्रीमान्, मैं खण्ड (2) में यह संशोधन रखना चाहता हूं:

> ''गत पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ङ) में दी हुई अनर्हताओं को लेकर उठने वाले किसी प्रश्न पर विनिश्चय देने से पूर्व राज्यपाल निर्वाचन-आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।''

***अध्यक्ष:** श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा प्रस्तावित संशोधन में, जैसा कि मैं समझ पाता हूं, निर्वाचन के पहले या निर्वाचन काल में उत्पन्न होने वाली अनर्हता का प्रश्न नहीं रखा गया है। उसमें तो निर्वाचन के बाद विधान मण्डल का सदस्य हो जाने पर अगर कोई व्यक्ति किसी अनर्हता का भागी हो जाता है तो उसके सम्बन्ध में उठने वाले प्रश्न की बात कही गई है। ऐसे प्रश्नों का निपटारा निर्वाचन आयोग करेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** स्थिति यों है श्रीमान्। किसी अभ्यर्थी के विरुद्ध कोई याचिका (petition) आने पर आयोग उसकी जांच करेगा और हो सकता है निर्वाचन काल में किये गये कुछ अपराधों के लिये वह अभ्यर्थी को दोषी पाये पर इस बीच निर्वाचन समाप्त हो चुका रहेगा और अभ्यर्थी सदस्य के रूप में सभा में अपना स्थान ग्रहण कर चुका रहेगा।

***अध्यक्ष:** क्या ऐसे मामलों को निपटाने का अधिकार निर्वाचन-आयोग को नहीं है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** है, पर होता यह है कि ज्यों ही कोई व्यक्ति निर्वाचित हो जाता है उसे शपथ लेने और प्रतिज्ञान करने पर सभा में बैठने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह सभा में बैठता है और बाद में उसका प्रतिद्वंद्वी अभ्यर्थी निर्वाचन के सम्बन्ध में याचिका (Petition) दाखिल करता है और न्यायालय के इस निर्णय पर कि निर्वाचन कानून के अधीन वह कतिपय अपराधों का दोषी है वह व्यक्ति अपने स्थान से हटा दिया जाता है। यह मामला भी उपखण्ड (ङ) के अन्दर आयेगा। जब किसी व्यक्ति ने सदस्य के रूप में सभा में स्थान ग्रहण कर लिया है उसके बाद.....

***अध्यक्षः** मुझे ऐसा मालूम होता है कि यहां दो तरह की अनर्हताओं का उल्लेख है। कोई सदस्य सदस्य होने के पूर्व या निर्वाचन-काल में, किसी अनर्हता का भागी हो सकता है ऐसे मामलों को निपटाने का अधिकार निर्वाचन-न्यायधिकरण होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह तो निर्भर करता है इस बात पर कि आगे चल कर क्या प्रक्रिया इसके लिये निर्धारित करते हैं।

***अध्यक्षः** पर सभा में स्थान ग्रहण करने के बाद भी हो सकता है कोई सदस्य किसी अनर्हता का भागी हो जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसी का प्रावधान तो उपखण्ड (ङ) में किया गया है।

***अध्यक्षः** फिर अन्य अनर्हतायें भी किसी पर लागू हो सकती हैं। कोई व्यक्ति विकृत मस्तिष्क हो जा सकता है या अनुन्मुक्त दिवालिया हो जा सकता है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इन सबका प्रावधान यहां किया गया है। यह सब अनर्हतायें सदस्यों के लिये लागू होती हैं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** कृपया संशोधन को पढ़िये तो।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अनर्हतायें दो तरह की हैं। एक तो वह अनर्हतायें हैं जो अभ्यर्थी के लिये लागू होती हैं जिन लोगों पर यह अनर्हतायें लागू होती हैं वह निर्वाचन के लिये उम्मीदवार ही नहीं बन सकते। दूसरी अनर्हतायें वह हैं जो सदस्यों के लिये लागू होती हैं। चुने जाने के बाद अगर कोई अनुच्छेद 167 में उल्लिखित अनर्हता का भागी हो जाता है वह सभा में न बैठ सकेगा। दोनों अनर्हतायें भिन्न हैं। दोनों को मिला कर गुंजलक न पैदा कीजिये।

***माननीय श्री के. सन्तानमः** 167-क के अन्दर दोनों ही आ जाती हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** ऐसा हो सकता है। मैं मसले को समझाये देता हूं। सब कुछ निर्भर करता है, इस बात पर निर्भर करता है कि किस तरह की प्रक्रिया हम इसके लिये निर्धारित करते हैं। अगर हम यह प्रक्रिया बरतना तय करते हैं कि अभ्यर्थी चुनाव के लिये अर्ह है या नहीं इसे हम आरम्भिक प्रश्न यानी चुनाव से पहले उठने वाला प्रश्न मानेंगे तो उस हालत में अनुच्छेद 167 नहीं लागू होगा। पर इसके प्रतिकूल अगर हम यह वर्तमान प्रक्रिया बरतते हैं कि चुनाव सम्बन्धी सभी प्रश्नों पर मय इस प्रश्न के कि अभ्यर्थी चुनाव के लिये अर्ह है या नहीं, विचार किया जा सकता है, तो उस

हालत में अनुच्छेद 167 लागू होगा। मेरा तथा मसौदा-समिति का इरादा यही है कि एक ऐसा प्रावधान कर दिया जाये जिसके अनुसार निर्वाचन-आयोग कतिपय आरम्भिक प्रश्नों का निपटारा कर दे ताकि चुनाव के सम्बन्ध में जो विवाद उठे वह केवल इसी प्रश्न को लेकर कि चुनाव ठीक-ठीक तरह से हुआ था या नहीं। पर यहां यह सारी बातें एक ही जगह रख दी गई हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): सदस्य चुने जाने के विरुद्ध तथा चुने जाने पर सदस्य बने रहने के विरुद्ध अलग-अलग अनर्हतायें रखी गई हैं। और दोनों ही अनर्हताओं के सम्बन्ध में उठने वाले प्रश्न अनुच्छेद 167(1) के अन्दर आ जाते हैं। इसे और स्पष्ट करने के लिये यहां यह लिख देना जरूरी है कि ऐसा ऐसा होने पर अभ्यर्थी निर्वाचन के लिये अनर्ह हो जायेगा और ऐसा होने पर सदस्य, विधान मण्डल का सदस्य बने रहने के लिये अनर्ह हो जायेगा। इसे और साफ कर देना जरूरी है और हम ऐसा कर सकते हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): बहस समाप्त करने का प्रस्ताव पेश किया गया था और उसे आपने स्वीकार भी कर लिया था। इसलिये मैं यह समझ रहा था कि डा. अम्बेडकर के उत्तर के बाद, इस प्रश्न पर बहस खत्म हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** मुझे खेद है, मैं इसे भूल ही गया था।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यदि अनुमति हो तो एक बात कहूं श्रीमान्, मैं वक्तृता नहीं दूंगा। आपके आदेश को मैं शिरोधार्य करता हूं। बात यह है कि डा. अम्बेडकर ने उत्तर में एक संशोधन रखने का प्रयास किया है। अन्यथा, यदि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लिया जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं अब यह सुझाव देना चाहता हूं कि डा. अम्बेडकर को अपना यह संशोधन वापस ले लेना चाहिये कि जिसे वह उत्तर देने के सिलसिले में पेश करना चाहते थे।

***अध्यक्ष:** आप जो कुछ कहना चाहते थे कह चुके। मुझे खेद है कि मैं इस बात को भूल गया कि बहस समाप्त करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है।

***श्री आर.के. सिधवा:** डा. अम्बेडकर के संशोधन के बारे में आपका क्या निर्णय है। उनके संशोधन को अब इस मौके पर हम नहीं स्वीकार कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** अगर मूल संशोधन रखने वाले सज्जन उसे स्वीकार कर लेते तो और बात थी पर अब वह पेश नहीं हो सकता है। प्रस्ताव यह है:

> ''कि सूची 1 के संशोधन नं. 65 में, प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 167-क में:
>
> '(1) खण्ड में 'Governor and his' शब्दों की जगह 'Election Commissioner and its' शब्द रखे जायें, तथा
>
> (2) खण्ड (2) को और खण्ड (1) के प्रारम्भ में रखे हुये अंक '(1)' को हटा दिया जाये।' ''

संशोधन नामंजूर हुआ।

***अध्यक्ष:** अब आता है श्री टी.टी. कृष्णमाचारी का संशोधन।

***कई माननीय सदस्य:** डा. अम्बेडकर के संशोधन के साथ या उसको छोड़ कर के?

***अध्यक्ष:** उसे छोड़ कर। प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2441 के स्थान पर निम्नलिखित नया संशोधन रखा जाये:

'कि अनुच्छेद 167 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

167-क सदस्यों की अनर्हताओं के प्रश्नों पर विनिश्चयन—(1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि राज्य के विधान मण्डल का सदस्य गत पूर्ववर्ती अनुच्छेद के खण्ड (1) में वर्णित अनर्हताओं का भागी हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न राज्यपाल को विनिश्चयन के लिये सौंपा जायेगा और उसका विनिश्चयन अन्तिम होगा।

(2) ऐसे किसी प्रश्न पर विनिश्चयन देने से पूर्व राज्यपाल निर्वाचन-आयोग की राय लेगा तथा ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।''

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** चूंकि यह संशोधन स्वीकृत हुआ है इसलिये श्री मांडलोई का संशोधन अपने आप गिर जाता है। अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 167-क को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 167-क संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 171

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर केवल एक ही संशोधन है और वह है संशोधन नं. 67।

***श्री सतीश चन्द्र** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं इस संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं। मैं इस बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं कि अनुच्छेद 164 के सम्बन्ध में आपने जो निर्णय दिया है वह क्या इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में भी लागू होता है? राज्य के विधान-मण्डल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक का जो सिद्धान्त है वह अगर आगे चल कर मंजूर नहीं होता है तो मसौदा-समिति इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में सभी आनुषंगिक संशोधन खुद कर लेगी तो?

***अध्यक्ष:** हां, मेरा ख्याल है कि वह निर्णय यहां भी लागू होगा। प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 171 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 171 संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 175

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कई संशोधन हैं। इनमें एक संशोधन सरदार भूपेन्द्रसिंह मान का है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अनुच्छेद 175 और 176 पर विचार अभी रुका रहेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** अनुच्छेद 172 का क्या होगा?

***अध्यक्षः** यह रुका रहेगा। इस पर आज विचार नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 187

(नं. 2524 से 2529 तक के संशोधन पेश नहीं किये गये।)

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्ः

> ''कि अनुच्छेद 187 खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'विधान मण्डल के पुनः अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह के अवसान पर' शब्दों की जगह 'अध्यादेश के प्रवर्तित किये जाने से दो सप्ताह के अवसान पर' शब्द रखे जायें।''

आपकी अनुमति से श्रीमान्, मैं एक और संशोधन पेश करना चाहूंगा जो मेरे उपयुक्त संशोधन के फलस्वरूप आवश्यक हो जाता है। मेरा दूसरा संशोधन यह हैः

> ''कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) की व्याख्या को हटा दिया जाये।''

अभी उस दिन गवर्नर-जनरल द्वारा जारी किये गये अध्यादेश की अवधि के सम्बन्ध में यहां इसी तरह की बहस चल पड़ी थी। उस दिन भी इस प्रश्न पर मेरा मंतव्य वही था जो आज है। पर मैं यह अनुभव करता हूं कि राज्य के विधान-मण्डल के सभी सदस्य एक ऐसे क्षेत्र में रहते हैं जो उस क्षेत्र से कहीं छोटा है जहां से कि केन्द्रीय विधान मण्डल के सदस्य लिये जाते हैं और इसलिये उनका अधिवेशन के लिये समवेत हो जाना आसान है। अतः गवर्नर द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश को, विधान मण्डल के समक्ष उपस्थित करने के लिये हमें 14 दिनों की अवधि पर्याप्त है और यही अवधि रखनी चाहिये।

अनुच्छेद का जो वर्तमान है उसके अनुसार, गवर्नर द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश उस अवधि तक प्रवर्तन में रहेगा जब तक कि प्रान्त का विधान मण्डल अधिविष्ट नहीं होता है। विधान मण्डल के अधिविष्ट होने के बाद भी अध्यादेश विधान मण्डल के पुनः अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह की अवधि तक प्रवर्तन में रहेगा। और यदि इसके पूर्व ही उसकी प्रतिनिन्दा का संकल्प विधान सभा से पारित और यदि विधान परिषद् है तो उससे स्वीकृत हो जाता है तो ऐसे संकल्प के पारित या स्वीकृत होने पर वह प्रवर्तन शून्य होगा। अब विधान मण्डल के अधिवेशनों में 5 माह से अधिक का व्यवधान हो सकता है। इसलिये इसका मतलब यह हुआ कि अध्यादेश 6 महीने और 6 सप्ताह की अवधि तक प्रवर्तन में रह सकता है।

खण्ड (2) की व्याख्या में यह कहा गया है कि अगर राज्य के विधान मण्डल के दो सदन हैं और वे भिन्न-भिन्न तिथियों पर पुनः अधिविष्ट होते हैं तो उस खण्ड के

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

प्रयोजनार्थ 6 सप्ताह की अवधि की गणना उन तिथियों में से पिछली तिथि से की जायेगी। अब मान लीजिये कि राज्य का दूसरा सदन बैठता है विधान-सभा की बैठक के एक महीने बाद। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्यादेश प्रवर्तन में रहेगा। 6 महीने से कुछ कम दिन की अवधि, धन एक महीने की अवधि जिसमें कि दूसरा सदन अधिविष्ट न हो पायेगा, धन 6 सपतह की अवधि तक। और यदि 6 सप्ताह की अवधि के पूर्व ही अध्यादेश की प्रतिनिन्दा का संकल्प विधान सभा द्वारा पारित और विधान-परिषद् द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो उतनी अवधि इसमें से घट जायेगी। मुझे यह बिल्कुल अनावश्यक प्रतीत होता है कि एक अध्यादेश को, जो कार्यपालिका द्वारा प्रवर्तित एक कानून होगा, इतनी लम्बी अवधि तक प्रवर्तन में रहने दिया जाये। यदि ऐसी कोई आकस्मिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें अध्यादेश का प्रवर्तन में लाना जरूरी हो जाता है, जिसमें कार्यपालिका के लिये यह अपेक्षित हो जाता है कि वह बिना विधान मण्डल की अनुमति लिये कोई कानून लागू कर दे तो ऐसी स्थिति में यह परमावश्यक है कि विधान मण्डल को अविलम्ब समाहूत किया जाये। इसलिये मेरा यह ख्याल है कि अध्यादेश के प्रवर्तन की जो अवधि है उसे हमें बहुत कम कर देना चाहिये।

अब सवाल यह उठता है कि अध्यादेश के प्रवर्तित किये जाने के बाद किस अवधि के अन्दर उस पर विचार करने के लिये विधान मण्डल को आहूत किया जाये? मैं समझता हूं कि बड़े से बड़े प्रान्त के लिये भी दो सप्ताह की अवधि इसके लिये काफी है। यह तो स्पष्ट है श्रीमान्, कि विधान मण्डल अगर बैठा हुआ है तो चाहे कैसी भी गम्भीर और गहन सद्यस्कृत्यता की स्थिति क्यों न उत्पन्न हो गई हो, और कार्यपालिका की राय में चाहे यह कितना भी आवश्यक क्यों न हो कि उसके सम्बन्ध में शीघ्र कोई कार्रवाई की जाये, पर बिना विधान मण्डल द्वारा कोई कानून पास कराये, कार्यपालिका कुछ नहीं कर सकती है। पर अगर विधान मण्डल अधिवेशन में न हो और उस समय सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति उत्पन्न हो जाये तो उस अवस्था में कार्यपालिका का कोई ऐसा अध्यादेश प्रवर्तन में लाना, जिसको कि वही प्रभाव और बल प्राप्त हो जो कि विधान मण्डल द्वारा निर्मित कानून को प्राप्त रहता है, उचित कहा जा सकता है। पर सद्यस्कृत्यता की कैसी भी स्थिति क्यों न हो, अध्यादेश का आवश्यकता से एक दिन भी अधिक प्रवर्तन में रखना ठीक नहीं कहा जा सकता है और उसे यथाशक्ति विधान मण्डल के समक्ष उपस्थित कर ही देना चाहिये। किसी संकटकालीन स्थिति के अस्तित्व के आधार पर श्रीमान्, यह कभी भी उचित नहीं माना जा सकता है कि कार्यपालिका ऐसी गतिविधि रखे कि उसके द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश जितनी अधिक अवधि तक हो सके इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन प्रवर्तन में बना रहे। कार्यपालिका का दृष्टिकोण यह न होना चाहिये कि विधान मण्डल को आहूत करने में विलम्ब किया जाये ताकि अध्यादेश अधिक से अधिक अवधि तक प्रवर्तन में बना रहे। बल्कि उसका दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि विधान मण्डल को यथाशीघ्र आहूत कर अध्यादेश को उसके समक्ष रख दिया जाये। कार्यपालिका अगर इस तरह काम करती है जैसा कि मैंने सुझाया है तभी तो उसके कार्य संविधान की भावना के अनुरूप हो सकते हैं और तभी विधान मण्डल की यह शक्ति सार्थक समझी जा सकती है कि कार्यपालिका के कार्यों के लिये विधान मण्डल की स्वीकृति होनी चाहिये। इसलिये मैं

यह समझता हूं श्रीमान्, कि मेरा संशोधन सर्वथा समुचित एवं तर्कसंगत है। इससे कार्यपालिका को यह शक्ति मिल जाती है कि सद्यस्कृत्यता की स्थिति उत्पन्न होने पर आवश्यक उपाय का अवलम्बन कर सके और जनता के प्रतिनिधियों को भी यह शक्ति मिल जाती है कि ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर क्या करना ठीक होगा इस पर विचार कर वह आवश्यक उपाय का अवलम्बन कर सके।

जैसा कि मैंने अभी उस दिन कहा है, इस अनुच्छेद में ऐसी व्यवस्था रखने के विरुद्ध आपत्ति सिर्फ यह नहीं है कि इससे अध्यादेश की अवधि बिना जरूरत बढ़ जाती है बल्कि आपत्ति यह है कि इससे यह रुकावट पैदा हो जाती है कि विधान मण्डल उस पर विचार नहीं कर पाता है कि अध्यादेश में रखी गई शर्तें स्थिति को देखते हुये ठीक हैं या नहीं। विधान मण्डल बैठने पर क्या करेगा? या तो वह अध्यादेश पर असहमति प्रकट कर सकता है या अगर वह कार्यपालिका के इस विचार से सहमत भी होता है कि ऐसी विशेष स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें विशेष कार्रवाई करना ही जरूरी है तो सम्भव है वह यह अनुभव करे कि अध्यादेश द्वारा कार्यपालिका को अत्यधिक अधिकार मिल जाते हैं और वह उसमें ऐसा संशोधन कर दे कि उपस्थित स्थिति के अनुरूप जनसाधारण के हित संरक्षित रहें। संकटकालीन स्थिति का मतलब यह नहीं है कि जनता के अधिकारों को ही पूर्णतः निलम्बित कर दिया जाये। ऐसी भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें ऐसा ही करना जरूरी हो पर ऐसी असाधारण स्थिति कभी-कभी ही उत्पन्न हो सकती है। अन्य किसी साधारण आकस्मिक स्थिति के उत्पन्न होने पर, जिसमें विशेष कार्रवाई करना जरूरी हो, जनता के साधारण अधिकारों की जहां तक सम्भव हो अवश्य रक्षा होनी चाहिये। इसलिये यह जरूरी है कि कार्यपालिका द्वारा पास किया हुआ प्रत्येक अध्यादेश यथासम्भव शीघ्र जन प्रतिनिधियों के समक्ष विचारार्थ रख दिया जाये।

(संशोधन नं. 2531, 2533 और 2534 पेश नहीं किये गये।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह प्रस्ताव करता हूं: श्रीमान्:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2523, 2525, 2526, 2527, 2529, 2530 या नं. 2532-2534 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

(1) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (1) में 'for him to take immediate action he may promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्दों के स्थान पर 'that immediate action be taken, he shall report the matter to the President who may then promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्द रखे जायें और खण्ड (क) का परन्तुक हटा दिया जाये।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(2) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) में, 'assented to by the Governor' शब्दों की जगह 'which has been reserved for the consideration of the President and assented to by him' शब्द रखे जायें।

(3) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) के उपखण्ड (b) में, 'Governor' शब्द की जगह 'President' शब्द रखा जाये।

(4) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (3) में, 'assented to by the Governor' शब्दों के आगे 'or by the President' शब्द रखे जायें और खण्ड का परन्तुक हटा दिया जाये।' ''

इन संशोधनों के बाद श्रीमान्, अनुच्छेद का रूप यह होगा–

''187. (1) If at any time, except when the Legislative Assembly of a State is in session, or where there is a Legislative Council in a State, except when both Houses of the Legislature are in session, the Governor is satisfied that circumstances exist which render it necessary that immediate action be taken, he shall report the matter to the President who may then promulgate such ordinances as the circumstances appear to him to require.

(2) An Ordinance promulgated under this article shall have the same force and effect as an Act of the Legislature of the State which has been reserved for the consideration of the President and assented to by him, but every such Ordinance—

(a) shall be laid before the Legislative Assembly of the State, or where there is a Legislative Council in the State, before both the Houses, and shall cease to operate at the expiration of six weeks from the re-assembly of the legislature, or if before the expiration of that period a resolution disapproving it is passed by the Legislative Assembly and agreed to by the Legislative Council, if any, upon the passing of the resolution or, as the case may be, on the resolution being agreed to by the Council; and

(b) may be withdrawn at any time by the President.

Explanation–Where the Houses of the Legislature of a State having a Legislative Council are summoned to reassembly on different dates, the period of six weeks shall be reckoned from the latter of those dates for the purposes of this clause.

(3) If and so far as an Ordinance under this article makes any provision which would not be valid if enacted in an Act of the Legislature of the State assented to by the Governor or by the President, it shall be void."

[187. (1) उस समय को छोड़ कर जब, राज्य की विधान सभा और जिस राज्य में विधान-परिषद् है वहां, विधान-मण्डल के दोनों आगार, सत्रस्थ हैं, यदि किसी समय शासक को यह निश्चय हो जाये कि ऐसी स्थितियां विद्यमान हैं जिनमें यह अपेक्षित है कि तुरंत कार्रवाई की जानी चाहिये तो वह मामले की सूचना राष्ट्रपति को देगा जो ऐसे अध्यादेश प्रवर्तन कर सकेगा जो परिस्थितियां की ओर से उसे अपेक्षित प्रतीत हों।

(2) इस अनुच्छेद के अधीन प्रवर्तित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो राज्य के विधान मण्डल के ऐसे अधिनियम का होता है जो राष्ट्रपति के विचारार्थ आया हो और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत हो गया हो—

(क) राज्य की विधान सभा के समक्ष और जहां राज्य में विधान-परिषद् है वहां दोनों आगारों के समक्ष रखा जायेगा और विधान-मण्डल के पुनः अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह के अवसान पर अथवा यदि उस कालावधि के अवसान से पूर्व उसकी प्रतिनिन्दा का संकल्प विधान सभा से पारित और यदि विधान-परिषद् है तो उससे स्वीकृत हो जाता है तो संकल्प पारण होने पर अथवा संकल्प स्वीकृत होने पर, जैसी स्थिति को, प्रवृत्त न रहेगा; और

(ख) राष्ट्रपति द्वारा किसी समय भी प्रत्याहूत किया जा सकता है।

व्याख्या—जब विधान-परिषद् वाले राज्य के विधान मण्डल के आगार भिन्न-भिन्न तिथियों में पुनः एकत्रित होने के लिये बुलाये जाते हैं तो इस खण्ड के प्रयोजनार्थ 6 सप्ताह की अवधि की गणना उन तिथियों में से पिछली तिथि से की जायेगी।

(3) इस अनुच्छेद के अधीन प्रवर्तित अध्यादेश, यदि और जिस मात्रा तक ऐसा प्रावधान करता है जो विधान-मण्डल द्वारा निर्मित और शासक द्वारा अथवा राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के रूप में अमान्य होता है तो वह अध्यादेश उस मात्रा तक शून्य होगा।]

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं यह नहीं चाहता, श्रीमान् कि अपना संविधान ऐसे किसी प्रावधान को रख कर असुन्दर बनाया जाये जिसके द्वारा राष्ट्रपति या अन्य किसी प्राधिकारी को अध्यादेश प्रवर्तित करने की शक्ति मिलती हो। किन्तु जब सभा इस बात को स्वीकार ही कर चुकी है कि कई अवसरों पर राष्ट्रपति को अध्यादेश निकालने की शक्ति रहेगी तो मैं यही चाहता हूं कि अध्यादेश प्रवर्तित करने की शक्ति यदि दी ही जाती है, वह केवल राष्ट्रपति को ही दी जानी चाहिये और राज्यपालों को यह शक्ति न प्राप्त रहनी चाहिये। मैं चाहता हूं कि यह असाधारण शक्ति केवल भारतीय संघ के राष्ट्रपति को प्राप्त रहे। इसलिये मैं यह कहता हूं कि यदि सद्यस्कृत्यता की कोई स्थिति उत्पन्न हो जाये तो, बजाय इसके कि राज्यापाल स्वयं अध्यादेश निकाले, उसे परिस्थिति की सूचना राष्ट्रपति को दे देनी चाहिये और वह जैसा भी अध्यादेश आवश्यक समझेगा प्रवर्तित करेगा। हां राज्यपाल को इस बात का औचित्य दिखलाना होगा कि उत्पन्न स्थिति में ऐसे असाधारण उपाय का अवलम्बन करना आवश्यक है। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री उस पर विचार करके आवश्यक कार्रवाई करेंगे। अध्यादेश का अमली अर्थ यह होता है कि विधान मण्डल की सारी शक्ति उसके द्वारा छिन जाती है। इसलिये ऐसे असाधारण उपाय का अवलम्बन कभी-कभी ही होना चाहिये। स्वतंत्र भारत के लिये जो संविधान हम बना रहे हैं उसमें हम अभी भी पराधीनता-कालीन बातों को रख रहे हैं जिनसे हम गुजर चुके हैं। मैं तो आशा करता हूं कि जल्द ही अब जमाना बदल जायेगा और जनता इस बात पर जोर देने लगेगी कि कोई भी अध्यादेश न प्रवर्तित किया जाये और जो कुछ भी किया जाये वह विधान मण्डल में जन प्रतिनिधियों द्वारा ही किया जाये। उस समय गवर्नर के अध्यादेश प्रवर्तित करने पर हम स्वयं आक्रोश करेंगे। इसलिये मैं समझता हूं कि अध्यादेश सम्बन्धी शक्ति अगर देनी ही है तो राज्यपालों को न दी जानी चाहिये बल्कि केवल राष्ट्रपति को ही दी जानी चाहिये। यदि किसी प्रान्त विशेष को अध्यादेश की आवश्यकता हो तो उसका राज्यपाल स्थिति की सूचना राष्ट्रपति को दे देगा और अध्यादेश प्रवर्तित करना आवश्यक है या नहीं इस पर राष्ट्रपति ही विचार करेगा। इससे यह भी होगा कि प्रान्त की स्थिति से केन्द्र को परिचय मिलता रहेगा और जो अध्यादेश प्रवर्तित किया जायेगा वह समुचित रूप से विचार करने के बाद ही प्रवर्तित होगा।

इस सम्बन्ध में मेरे अन्य जो संशोधन हैं वह केवल आनुषंगिक मात्र हैं। मेरे मूल संशोधन के फलस्वरूप उन अन्य संशोधनों का होना भी आवश्यक है। आशा है सभा इस संशोधन को पसन्द करेगी और उसे स्वीकार करेगी।

***श्री जसपतराय कपूर:** मेरा संशोधन नं. 74 बहुत कुछ इबारत के बारे में है इसलिये उसे मैं मसौदा समिति पर छोड़ता हूं। मैं यही चाहता हूं कि मसौदा-समिति जब संविधान की इबारत में अन्तिम रूप से संशोधन करे तो मेरे इस संशोधन पर भी वह विचार जरूर करे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** अपने संशोधन नं. 75 के सम्बन्ध में मैं भी यही कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद एवं संशोधन पर विचार किया जा सकता है।

(कोई सदस्य बोलने के लिये नहीं उठा।)

प्रस्ताव यह है:

''कि संशोधन-सूची के संशोधन नं. 2523, 2525, 2526, 2527, 2529, 2530 या नं. 2532-2534 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:

(1) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (1) में 'for him to take immediate action he may promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्दों की जगह 'that immediate action be taken, he shall report the matter to the President who may then promulgate such Ordinances as the circumstances appear to him to require' शब्द रखे जायें और खण्ड (क) का परन्तुक हटा दिया जाये।

(2) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) में, 'assented to by the Governor' शब्दों की जगह 'which has been reserved for the consideration of the President and assented to by him' शब्द रखे जाये।

(3) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (2) के उपखण्ड (b) में, 'Governor' शब्द की जगह 'President' शब्द रखा जाये।

(4) कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (3) में, 'assented to by the Governor' शब्दों के आगे 'or by the President' शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव है:

''कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'विधान मण्डल के पुन: अधिविष्ट होने से 6 सप्ताह के अवसान पर' शब्दों की जगह 'अध्यादेश के प्रवर्तित किये जाने से दो सप्ताह के अवसान पर' शब्द रखे जायें; तथा

कि अनुच्छेद 187 के खण्ड (3) की व्याख्या हटा दी जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हुये।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 187 संविधान का अंग समझा जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 187 संविधान में शामिल किया गया।

नया अनुच्छेद 196-क

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 196-क को लेते हैं। इस नवीन अनुच्छेद को रखने का सुझाव संशोधन नं. 2639 में दिया गया है जिसकी सूचना डा. पी.के. सेन ने दी है। इसी तरह का एक संशोधन उन्होंने उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में रखा था पर वह अस्वीकार कर दिया गया था।

(संशोधन नं. 2639 पेश नहीं किया गया)

तो यह अनुच्छेद हटा दिया जाता है।

अनुच्छेद 203

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 203 को लेते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** इस पर अभी विचार रुका रहेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अनुच्छेद 203 (2) (ख) के सम्बन्ध में यह प्रश्न है कि इसे यों ही रखा जाये या इसमें कुछ संशोधन कर दिया जाये। इस पर विचार कर लेने के लिये हमें कुछ समय चाहिये। कल तक, इस पर विचार कर हम तैयार हो जायेंगे।

अनुच्छेद 208

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 208 को लेते हैं इस पर कोई संशोधन नहीं आया है? प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 208 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 208 संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 209

***अध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 209 को लिया जाता है। इस पर कोई संशोधन नहीं आया है। सुतरां प्रस्ताव यह है:

''कि अनुच्छेद 209 को संविधान का अंग माना जाये।''

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 209 संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 209-क

***अध्यक्ष:** नवीन अनुच्छेद 209-क को रखने के बारे में कई संशोधन आये हैं।

***माननीय डा. बी.आर अम्बेडकर:** 209-क पर विचार अभी रुका रहेगा।

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने दे रखी है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** उस पर विचार अभी रुका रह सकता है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** संविधान पर विचार करने में जो मनमानी पद्धति हम अपना रहे हैं उसे देखते हुये अन्य अनुच्छेदों पर बहस आज मुल्तवी कर देनी चाहिये और हमें यह साफ-साफ मालूम हो जाना चाहिये कि कल किन-किन अनुच्छेदों पर यहां बहस होगी। जो पद्धति यहां बरती जा रही है—अवश्य ही इसमें आपकी कोई गलती नहीं है श्रीमान्—वह बहुत ही असुविधाजनक है।

***अध्यक्ष:** जहां तक कि आज की कार्यावली का सम्बन्ध है उसमें वह सभी अनुच्छेद दिये गये हैं जिन पर यहां विचार हुआ है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** आपने जो कहा है वह बिल्कुल सही है। पर अगर आप कार्यावली में यह दे देते हैं कि संविधान पर विचार किया जायेगा तो उसका मतलब यह नहीं है कि सभा का कोई भी सदस्य संविधान के सभी अनुच्छेदों पर एक ही दिन विचार करने के लिये तैयार होकर आ सकेगा।

***अध्यक्ष:** जहां तक कि आज की कार्यावली का सम्बन्ध है, उसमें वह सभी अनुच्छेद दिये हुये हैं जिन पर आज विचार किया गया है और उनको मैंने उसी क्रम से लिया है जिसमें वह कार्यावली में दिये हुये हैं। अभी उस दिन इस बारे में किसी ने शिकायत की थी इसलिये मैंने यह दे दिया था कि कार्यावली में उन अनुच्छेदों का उल्लेख हो जाना चाहिये जिन पर विचार किया जायेगा।

मैं समझता हूं कि अच्छा यह होगा कि अब हम कल प्रात: 8 बजे तक के लिये बैठक स्थगित कर दें।

इसके पश्चात् सभा बुधवार, 15 जून सन् 1949 के प्रात: 8 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।